शोधादर्श

84

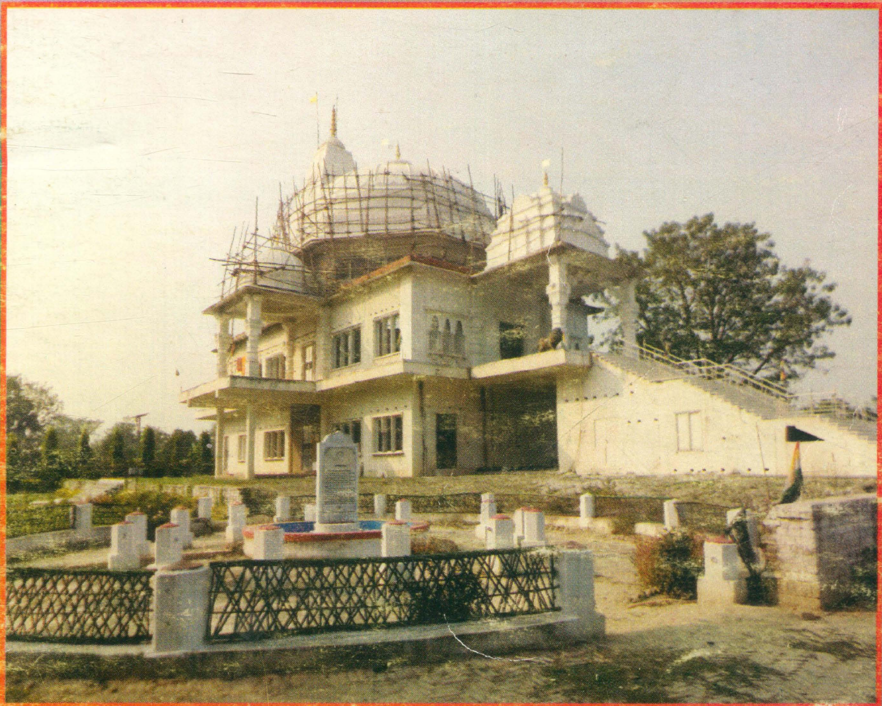

वैशाली में नव-निर्मित जैन मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

वैशाली के जैन मन्दिर का प्रवेश द्वार

मन्दिर परिसर में धर्मशाला

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक : (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, फोन नं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com मो. 9236062715

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

वीर निर्वाण संवत् 2543 **शोधादर्श - 84** दिसम्बर 2016 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	3–4
2	गुरु-गुण–कीर्तन सर्वधर्मसमभावी सन्त बनारसीदास	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	5–7
3	निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व – दीपावली	श्री अजित प्रसाद जैन	8–11
4	भ0 महावीर के उपदेश का सरांश	कवि बनारसीदास	11
5	ज्ञान और आनन्द के महत्व को रेखांकित करती है दीपावली	प्रो. डॉ. वीरसागर जैन	12
6	दीपावली महापर्व	श्री उमेश जैन शास्त्री	13
7	पन्द्रह अगस्त	श्री रमा कान्त जैन	14–17
	(टिप्पणी)	डॉ. शशि कान्त	17
8	जैन धर्म का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण	डॉ. शशि कान्त	18–21

9	भरत : एक शब्द यात्रा	श्री वेद प्रकाश गर्ग	22–29
10	चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य	डॉ. शशि कान्त	30–34
11	शिखर जी व गिरनार जी की तीर्थयात्रा के पुराने प्रमाण	श्री निर्मल कुमार पाटोदी	35–37
12	Mahāvīra's contribution to the mankind for all times	डॉ. समणी शशि प्रज्ञा	38–44
13	अहिंसात्मक अर्थशास्त्र एवं सम्पोषित आजीविका	डॉ. लोकेश चंद्र व डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन	45–49
14	कवि और कवि–सम्मेलन	श्री कैलाश नारायण टण्डन	50–55
15	नव वर्ष (पद्य)	श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'	55
16	दीपमालिका पर दीपछन्द (पद्य)	श्री बालकवि बैरागी	56
17	मौन मन (पद्य)	श्री अमर नाथ	57
18	एक श्रावक के मनोगत विचार	श्री प्रेम चंद जैन	58
19	भावात्मक सशक्तिकरण एवं युवा पीढ़ी के साथ सम्बन्ध	श्री प्रफुल्ल पारख	59–61
20	उन्नति के सोपान	आचार्य श्री कनकनंदी जी	62–63
21	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	64–69

खड़ी बोली कविता का विकास और मैथिलीशरण गुप्त; अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठ–परामर्श; भज गोविन्दम्; आलोक पुरुष महावीर; धर्ममंगल; जैन धर्म और दर्शन; विदेशों में जैन धर्म; समुत्थान सूत्र; मानव मार्ग दर्शन; श्रवणबेलगोल का इतिहास और आर्ष परम्परा; दिगम्बर जैन धर्म में तेरह पंथ समीक्षा; कन्हैया बने कुंथु सागर; मै महावीर बोल रहा हूं; शोध पत्रिकाएं

22	आभार	70
23	~~अभिनन्दन~~	70–72
24	शोक संवेदन	73
25	समाचार विविधा	74–75
26	पाठकों के पत्र	76–79

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, डॉ. उषा माथुर
डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार', श्री प्रेम चंद जैन
श्री बी.डी. अग्रवाल, डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल
श्री विष्णु दत्त शर्मा

27	आवश्यक सूचना	80
28	शोधादर्श के अभिदाता	कवर पृ. 3

सम्पादकीय

शोधादर्श का अंक 84 सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे यह अहसास बराबर होता है कि श्रद्धेय पितामह डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा संस्थापित और छोटे बाबा जी श्री अजित प्रसाद जैन एवं चाचा जी श्री रमा कान्त जैन द्वारा सम्पोषित इस पत्रिका के प्रकाशन के दायित्व का निर्वहन मैं आप सबकी सद्भावना से कर पा रहा हूं। इस अंक में कुछ विशिष्ट लेख राष्ट्रीय परिदृश्य की दृष्टि से भी दिये जा रहे हैं। नव वर्ष का आवाहन वयोवृद्ध वरिष्ठ साहित्यकार श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' की कविता से किया जा रहा है जो वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को रेखांकित करती है।

आगामी वर्ष 2017 में **शोधादर्श** का अंक 85 **युगपुरुष–त्रयी (डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन व श्री रमा कान्त जैन) स्मृति–ग्रन्थ** के रूप में प्रकाशित किया जायेगा। इस ग्रन्थ में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सम्पूर्ण समाकलन होगा। सभी पाठकों से निवेदन है कि वे उनके सम्बन्ध में अपने संस्मरणात्मक एवं विनयांजलि–परक उद्गार भेजने का अनुग्रह करें। ये उद्गार 30 जून 2017 तक भेज दिये जायें तो विशेष अनुग्रह होगा।

यह भी निवेदन है कि जो भी लेखादि भेजे जायें वे टंकित हों और हस्ताक्षरित हों।

उपरोक्त युगपुरुषों के जो लेखादि किसी पत्र–पत्रिका में प्रकाशित किये जाते हैं उनका सन्दर्भ दिया जाये और उस पत्रिका की प्रति भी भेजी जाये जिसमें वे प्रकाशित हों। **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** के अक्तूबर 2016 के अंक में कीर्तिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख **'महावीर युग में समाज और धर्म की स्थिति'** 'तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ' से उद्धृत

कर प्रकाशित किया गया है। इसके लिए हम उस पत्रिका के सम्पादक महोदय को साधुवाद देते हैं।

सभी सम्पादक बन्धुओं और विद्वान मनीषियों से निवेदन है कि पत्रिका अथवा पुस्तक की एक ही प्रति **सम्पादक, शोधादर्श** को **'ज्योति निकुंज, चारबाग (रोडवेज बस स्टेशन के पीछे), लखनऊ–226004** के पते पर ही भेजी जाये।

यहां मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि **शोधादर्श–83** में वैशाली निर्मित मंदिर का जो चित्र छपा है वह जैन मंदिर का नहीं अपितु नवनिर्मित बौद्ध मंदिर का है, जो नेट के द्वारा प्राप्त हुआ था। हमें भी आशंका थी, इसीलिए उसे **'जैन मन्दिर'** नहीं लिखा गया था। पटना के श्री ~~कल्याणमल~~ गंगवाल ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान आकर्षित किया। पुनः, 'प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान' के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' ने नवनिर्मित **जैन मन्दिर** का चित्र भेज कर समस्या का समाधान किया। उक्त चित्र इस अंक में मुख पृष्ठ पर एवं अन्दर कवर पृष्ठ 2 पर अंकित हैं। जो विभ्रम हुआ उसके लिए हमें खेद है।

मैं अपने सम्पादक मण्डल के सभी साथियों तथा संस्था की प्रबन्ध समिति के सदस्यों के सहयोग के लिए आभारी हूं।

नलिन कान्त जैन

सम्पादक

✧ ✧ ✧

चित्र परिचय

मुख पृष्ठ — **वैशाली में नव–निर्मित जैन मन्दिर**

कवर पृष्ठ 2 — **वैशाली के जैन मन्दिर का प्रवेश द्वार; मन्दिर परिसर में धर्मशाला**

✧

सर्वधर्मसमभावी सन्त बनारसीदास

– (कीर्तिशेष) डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन

मध्यकालीन जैन साहित्यकारों, कवियों, शास्त्रमर्मज्ञों, अध्यात्मवादियों एवं मरमी–साधकों में पं. बनारसीदास जी का स्थान सर्वोच्च एवं कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फ़ारसी तथा कई एक देशी बोलियों के वे अच्छे जानकार थे और हिन्दी भाषा (मध्य–देश की बोली) पर तो उनका पूर्ण अधिकार था – उनकी अधिकांश रचनाएं उसी भाषा में उपलब्ध हैं। काव्य शास्त्र में वे निष्णात थे। विभिन्न काव्यशैलियों एवं छन्दों में उन्होंने रचनाएं कीं और उनमें रस अलंकारादि का उपयुक्त ललित संचार किया। इसके अतिरिक्त अपनी अनेक एवं विविध मौलिक कृतियों तथा आर्ष ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद आदि में उन्हांने अपने समय की – सत्रहवीं शताब्दी के मुगलकालीन उत्तर भारत की – राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशा का भी प्रासंगिक सजीव चित्रण किया और अनेक युग प्रवृत्तियों की भी जानकारी प्रदान की। इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन इतिहास का एक ऐसा समसामयिक एवं प्रामाणिक स्रोत भी प्रस्तुत कर दिया जो एक प्रकार से अनोखा है।

पं. बनारसीदास जी एक प्रतिभा–सम्पन्न लोक कवि होने के साथ ही साथ क्रान्तिकारी सुधारक भी थे। जिस कुल में उनका जन्म हुआ था वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अनुयायी था। उनके प्रारंभिक गुरू भी एक श्वेताम्बर यति ही थे। किन्तु वयस्क होने पर स्वाध्याय द्वारा उनकी अपनी आस्था भगवत् कुन्द–कुन्द आदि दिगम्बराचार्यो की वाणी में दृढ़ हुई। फलतः श्वेताम्बरों ने उनका बहिष्कार किया और दिगम्बरों ने भी शायद उस समय उन्हें प्रत्यक्षतः नहीं अपनाया था। वैसे, उन्हें स्वयं को न दिगम्बरत्व से मोह था, न श्वेताम्बरत्व से। वह पन्थवाद, मतवाद या सम्प्रदायवाद से बहुत ऊपर थे और सर्वधर्म–समन्वय के प्रचारक थे। सूफी फ़कीरों और निर्गुणोपासक सन्तों द्वारा प्रवाहित रहस्यवादी आध्यात्मिक धारा के उत्कर्ष काल में पं. बनारसीदास जी ने जैन मरमीसाधकों की वैराग्यपूर्ण शांत आत्मसाधना का सफल प्रतिनिधित्व किया और अपने अध्यात्मवाद के द्वार से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत का भी प्रभूत पोषण किया। उन जैसा समन्वय–प्रधान सुधारवादी विचारक ही यह कह सकता था कि –

एक में अनेक हैं, अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है।

तथा

तिनकों दुविधा, जे लखैं रंगबिरंगी चाम।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अंतर राम।।

दिगम्बर और श्वेताम्बर अथवा जैन और वैष्णव की तो बात ही क्या, उनके निकट तो हिन्दू मुसलमान में भी कोई भेद नहीं था –

एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोइ।
मन की दुविधा मान कर, भए एकसौं दोइ।।
दोउ भूले भरम में, करैं वचन की टेक।
'राम राम' हिन्दू कहैं, तुर्क 'सलामालेक'।।
इनके 'पुस्तक' बांचिए, बेहू पढ़े 'कितेब'।
एक वस्तु के नाम दो, जैसे 'सोभा' 'जेब'।।

उनकी दृष्टि में –

देव तीर्थंकर गुरु जती, आगम केवलि–बैन।
धरम अनन्तनयात्मक, जो जानै सो जैन।।

और सच्चा ब्राह्मण वह है –

जो निहचै मारग गहै, रहै ब्रह्म गुन लीन।
ब्रह्म दृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन।।

वैष्णव के लक्षण प्रायः यह समझे जाते हैं –

तिलक तोष माला बिरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लच्छनसौं वैसनव, समुझै हरि परताप।।

किन्तु सच्चा वैष्णव तो वह है –

जो हर घट में हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हर छिन हरि सुमरन करै, विमल वैसनव सोइ।।

इसी प्रकार –

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गहि टिकै, मुसलमान है सोइ।।

जो व्यक्ति आत्मिक भावों की परख किये बिना ही केवल गृह त्याग देने के कारण स्वयं को योगी कहे और अन्य सबको मात्र गृहवासी होने के कारण ही भोगी कहे उसे बनारसीदास जी मूर्ख की संज्ञा देते हैं। परम तत्व का मर्म यदि नहीं जाना तो कितना ही किताबी ज्ञान क्यों न हो और

कितना ही बाह्य तप क्यों न किया जाता हो, सब व्यर्थ है। वह तो कहते हैं कि –

जो महंत हैं ज्ञान बिन, फिरै फुलाए गाल।
आप मत्त औरनि करै, सो कलिमांहि कलाल।।

बनारसीदास जी तो ब्रह्मज्ञान रूपी आकाश में सुमति रूप पक्षी बन कर यथाशक्ति उड़ने का प्रयास करने वालों में से थे, भले ही उक्त अनन्त आकाश का पार वे न पा सके।

लोगों ने उनको एक नवीन मत या पन्थ का प्रचारक भी कहा और बनारसी या बनरसिया पन्थ, अध्यात्ममत, तेरापंथ आदि नामों से उनका उल्लेख किया और पर्याप्त खंडन–मंडन भी किया। किन्तु स्वयं बनारसीदास जी ने कभी किसी मत या पन्थ की स्थापना का दावा नहीं किया। जैन धर्म के मर्म को जैसा उन्होंने भगवान कुन्द–कुन्द के **समयसार** आदि से समझा था उसमें अपनी दृढ़ प्रतीति होने और तदनुसार शुद्ध सम्यक्त्व की हार्दिक भावना रखने का दावा उन्होंने अवश्य किया है। आत्मधर्म के उक्त मर्म को हृदयंगम करने का ही यह परिणाम था कि पं. बनारसीदास जी ऐसे सर्वधर्म सम–भावी एवं समन्वयवादी विचारक हुए। यदि वह जैन परम्परा में न हुए होते तो उन्हें आज भारत के सार्वजनिक सन्त कहलाने की प्रतिष्ठा प्राप्त होती।

————————

(4–2–1963 को बनारसीदास की 377वीं जयन्ती पर जयपुर से प्रकाशित **वीर–वाणी** (वर्ष 15, अंक 8–9) के **कवि बनारसीदास विशेषांक** में डॉ. साहब ने बनारसीदास जी के सम्पूर्ण कृतित्व का समीक्षात्मक विवेचन किया था। उक्त विशेषांक में 39 विद्वानों ने बनारसीदास जी के जीवन और कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला था। उन मनीषियों में केवल डॉ. राजा राम जैन ही अब जीवित हैं।

बनारसीदास जी का जन्म जौनपुर में एक सामान्य गृहस्थ परिवार में 1586 ई. में हुआ था और 57 वर्ष की आयु में 1643 ई. में आगरा में उनका शरीरांत हो गया था। उनके सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन (स्मृतिशेष) श्री रमा कान्त जैन ने **शोधादर्श–48** (नवम्बर 2002) में किया है।

बनारसीदास जी की सबसे महत्वपूर्ण रचना **अर्द्ध कथानक** है जो हिन्दी भाषा में रचित सर्वप्रथम आत्मचरित है। इसमें कवि ने अपने जीवन के 55 वर्षो का यथार्थात्मक विवरण दिया है। यह समसामयिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का भी यथावत चित्रण करता है। – सम्पादक)

निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व – दीपावली

– (स्मृतिशेष) श्री अजित प्रसाद जैन

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के 980 वर्ष उपरांत (453 ई. में) वल्लभी में जुड़े मुनि सम्मेलन में सम्पन्न हुई **सुत्तागम** की अंतिम वाचना के आधार पर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण द्वारा संकलित एवं लिपिबद्ध किए गए अवशिष्ट आगम साहित्य में एक ग्रंथ **कल्पसुत्र** भी है जो अंतिम श्रुतकेवली भगवन्त भद्रबाहु स्वामी (ई.पू. 4 थी शताब्दी) कृत माना जाता है। अर्द्धमागधी भाषा में निबद्ध इस ग्रंथ में वीर प्रभु के निर्वाण महोत्सव एवं उसके निमित्त से दीपमालिका पर्व मनाए जाने का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अनुसार –

"भगवान का अंतिम चातुर्मास पावानगरी में हुआ। इस चातुर्मास में कार्तिक मास की अमावस्या के दिन जो अंतिम रात्रि थी उस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर ने कालधर्म को प्राप्त किया – उस रात्रि में नव मल्ल जाति के काशी देश के राजा तथा नव लिच्छवी जाति के कौशल देश के राजाओं का किसी कारणवश वहां सम्मिलन था।...उन्होंने इस अमावस्या के दिन...उपवास पोषध किया हुआ था। अब संसार से ज्ञान–उद्योत चला गया, अतः अब द्रव्य–उद्योत करेंगे, यह विचार कर उन्होंने दीप जलाए। उस दिन से दिवाली या दीपमालिका महोत्सव प्रचलित हुआ।"

दिगम्बर जैनाचार्य भगवज्जिनसेन स्वामी भी अपने संस्कृत भाषा के महाकाव्य **हरिवंश पुराण** (रचना – 783 ई.) में भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष गमन की अलौकिक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

"भगवान महावीर निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोधकर पावानगरी पहुंचे... जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष आठ मास व पन्द्रह दिन शेष रह गए तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के सुप्रभात में, रात्रि एवं दिन के संधिकाल में स्वभाव से ही योग निरोध कर घातिया कर्म रूप ईंधन के समान अघातिया कर्मों... को भी नष्ट कर, बंधन रहित हुए, संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध मोक्ष पद को प्राप्त हुए,...भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारों निकायों के देवों ने विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलायी हुई बहुत भारी दैदीप्यमान

दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। (वहां उपस्थित) राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिलकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की... उस समय से लेकर भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक की भक्ति संयुक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रति वर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हीं की स्मृति में दीपावली मनाने लगे।

जैन वाङ्गमय में भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव तथा उनके निमित्त से दीपमालिका पर्व के ये सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख उपलब्ध होते हैं तथा परवर्ती पुराणकारों–कथाकारों ने इन्हें ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

विक्रम की 16वीं–17वीं शती के काष्टासंघस्थ माथुरान्वय के पुष्करगण के यशस्वी भट्टारक यशःकीर्ति ने भी, जिन्हें परवर्ती विद्वानों ने उच्च कोटि के शास्त्र मर्मज्ञ साहित्यकार के रूप में स्मरण किया है, अपभ्रंश भाषा में भगवान महावीर की वंदना निम्न प्रकार की है –

पावापुर मज्झिहिं जिणेसु, वेदिणसह उज्झिवि मुत्ति ईसु।
चउसेह कम्मह करि विणासु, संपत्तउ सिद्ध णिवासु वासु।।
देवाली अम्मावस अलेउ, महोदेउ वोहि देवाहि देउ।
चउदेवणिकायहं अइमणुज्ज, अइवि विरइय णिव्वाणपुज्ज।।

(**भावार्थ**– पावापुर मध्य मुक्तीश जिनेश्वर वर्द्धमान महावीर ने वेदनीय का उच्छेद कर, चौसठ कर्म प्रकृतियों का नाश कर, सिद्धों के निवास को वास रूप में प्राप्त किया अर्थात् निर्वाण लाभ किया। उन देवाधिदेव महादेव की निर्वाण प्राप्ति के उपलक्ष में अमावस्या को दिवाली मनी, चारों निकाय के देवों और मनुष्यों ने वहां एकत्र होकर निर्वाण पूजा की।)

जैन धर्मावलंबी भगवान महावीर के मोक्ष कल्याणक महोत्सव के निमित्त से दीपावली का पावन पर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या की रात्रि में दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर भगवान को प्राप्त मोक्ष लक्ष्मी की तथा उसी दिन केवलज्ञान प्राप्त कर ज्ञान की ज्योति को अखंड प्रज्जवलित रखने वाले उनके प्रमुख गणधर गौतम गणेश की पूजा–अर्चना सहित बड़े हर्ष उल्लास, धार्मिकता एवं सात्विकता के साथ विगत 2543वर्षों से मनाते आ रहे हैं, जिसके ऐतिहासिक उल्लेख 350 ई.पू. से तथा लिखित अभिलेख 453 ई. से आज भी उपलब्ध हैं। (इस पर्व पर जुआ खेलना या अन्य किसी

भी व्यसन में लिप्त होना अथवा पटाखे आदि छोड़ने का हिंसा कार्य करना जैन संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है)।

कई मध्ययुगीन मुसलमान विद्वानों जैसे कि, अब्दुल रहमान मुलतानी (1300 ई. मे अपभ्रंश में रचित **सन्देश वाहा**) और अबुल फजल (1594 ई. में फारसी में रचित **आइन—ए—अकबरी**) ने तथा आधुनिक कालीन महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, परिपूर्णानन्द वर्मा आदि अनेक प्रख्यात विद्वानों, साहित्यकारों एवं चिन्तकों ने भी दीपावली पर्व का प्रारंभ भगवान महावीर के मोक्ष गमन से जुड़ा स्वीकार किया है। कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ तथा गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं भी संयोगवश इस पर्व से जुड़ गई।

एक बहुप्रचलित जनश्रुति के अनुसार भगवान रामचन्द्र ने लंकापति रावण का वध दशहरे के दिन कर विजय प्राप्त की थीं तथा दीपावली के दिन उनका अयोध्या में प्रवेश और राज्याभिषेक हुआ था जिसकी खुशी अयोध्यावासियों ने दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर मनाई थी। किन्तु इस जनश्रुति की पुष्टि रामकथा के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋषि वाल्मीकि कृत **रामायण** या बहुमान्य गोस्वामी तुलसीदास कृत **रामचरित मानस** से नहीं होती। इनके अनुसार राम ने 13 दिन के दिन—रात के निरन्तर युद्ध के बाद चैत्र शुक्ल 14 को रावण का वध किया तथा उसकी अन्त्येष्टी कराकर व विभीषण को लंका के सिंहासन पर अभिषिक्त कराकर वे पुष्पक विमान द्वारा एक सप्ताह के भीतर ही वैशाख कृष्ण 5 को प्रयाग में भारद्वाज ऋषि के आश्रम पधार गए थे तथा अगले दिन ही अयोध्या में उनका भव्य स्वागत व राज्याभिषेक हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि दीपावली को लक्ष्मी—गणेश की पूजा होती है पर भगवान राम की नहीं।

जैन धर्मावलंबियों द्वारा दीपावली पर्व को भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव के साथ इस अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के धर्मशासन से लेकर अंतिम केवली भगवन्त जम्बू स्वामी पर्यन्त उन सभी महान आत्माओं के श्रद्धांजलि पर्व के रूप में भी मनाया जाता है जिन्होंने अपने परम पुरुषार्थ से निर्बन्ध हो संसार—सागर पार कर मोक्ष पद प्राप्त किया। उन सभी की तथा उनकी निर्वाण भूमियों की बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ वंदना की जाती है तथा दीप अर्पित किए जाते हैं।

जैन संस्कृति में उन महापुरुषों की निर्वाण तिथि को बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मृत्यु महोत्सव के रूप में मनाने की परम्परा है जो कृत

कृत्य होकर संसार के आवागमन से मुक्त हो गए और जिनका यह अंतिम शरीर था।

(श्री अजित प्रसाद जी ने उपरोक्त विवेचना **शोधादर्श 45** (नवम्बर 2001) में दी थी। उस समय तक भगवान महावीर के निर्वाण को मात्र 2528 वर्ष हुए थे और यही उल्लेख उन्होंने अपने लेख में किया है। अब 2016 ई. में 2543 वर्ष हो गये हैं, तदनुसार लेख में यह वर्ष 2528 के स्थान पर उल्लिखित किया गया है।

इतना तो निर्विवाद है कि दीपावली पर्व भगवान महावीर के निर्वाण से सम्बन्धित है परन्तु यह विवादास्पद है कि कब से दीपमालिका पर्व के रूप में इसका प्रचलन हुआ।

लौकिक दृष्टि से इस पर्व का महत्व कृषि कर्म से सम्बन्धित है क्योंकि धान की फसल आने के बाद यह पर्व आता है। उसी प्रकार गेहूं की फसल के बाद होली का पर्व आता है। दक्षिण भारत में पोंगल और ओनम भी धान की फसल से सम्बन्धित हैं। यह पर्व कृषि प्रधान भारत के विशिष्ट अन्न उत्पादन से सम्बन्धित हैं। धर्म से भी इन पर्वो को जोड़ दिया गया है ताकि जन–मानस में जो आस्था की मनोभावना है उससे भी इन लौकिक पर्वो का सामन्जस्य हो जाये।

सामान्य जन–जीवन में दीपावली का क्या सामाजिक महत्व है इस पर प्रो. डॉ. वीर सागर जैन और श्री उमेश जैन शास्त्री नैकोरा के विचार भी आगे दिए जा रहे हैं।

— सम्पादक)

✧✧✧

भगवान महावीर के उपदेश का सारांश

— कवि बनारसीदास

लोभवन्त मानुष जो औगुण अनन्त तामें,
जाके हिये दुष्टता सो पापी परधान है।
जाके मुख सत्यवानी सोई तपको निधानी,
जाकी मनसा पवित्र सो तीरथथान है।।
जामैं सज्जन की रीति ताकी सब हीसों प्रीति,
जाकी भली महिमा सो आभरणवान है।
जामें है सुविद्या सिद्धि ताही के अटूटऋद्धि,
जाको अपजस सो तो मृतक समान है।।

✧✧✧

ज्ञान और आनन्द के महत्व को रेखांकित करती है दीपावली

– प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन

दीपावली का मूल सन्देश है कि जिस जीवन में ज्ञान और आनन्द है, वही जीवन वास्तविक जीवन है, उत्तम जीवन है। तथा जिस जीवन में ज्ञान और आनन्द नहीं, वह जीवन जीवन नहीं, मरण है। ऐसा व्यक्ति तो चलता–फिरता शव है।

अतः अपने और दूसरों के जीवन में से अज्ञान एवं दुःख को दूर करना और ज्ञान एवं आनन्द को प्राप्त करना–कराना ही सही अर्थो में दीपावली मनाना है।

यद्यपि हम सभी जानते और कहते तो रहते हैं कि जीवन में ज्ञान और आनन्द का बड़ा महत्व है, परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि हमारे जीवन में ज्ञान और आनन्द की बहुत उपेक्षा होती रहती है। हम हर छोटी से छोटी चीज का महत्व/मूल्य समझ लेते हैं, उनकी हानि नहीं होने देते हैं पर ज्ञान और आनन्द को जीवन में सर्वोपरि नहीं रख पाते। तभी तो ज्ञानाराधना छोड़कर जड़ भौतिक पदार्थो के चक्कर में उलझ जाया करते हैं। और इसी तरह अपने आनन्द स्वभाव को भूलकर व्यर्थ ही छोटी–छोटी बात पर दुःख मनाने लग जाते हैं। दीपावली हमें पुनः–पुनः याद दिलाने आती है कि जीवन में ज्ञान और आनन्द का महत्व समझो। जीवन रोटी–कपड़ा, सोना–चांदी, नौकर–चाकर से नहीं संवरता, ज्ञान से संवरता है, ज्ञान से पवित्र विश्व में अन्य कुछ भी नहीं है– **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' (गीता)।**

ज्ञान की तरह आनन्द भी जीवन का एक बड़ा भारी मूल्य है। दीपावली हमें कहती है कि सदा आनन्दित रहो, कभी दुःखी मत होओ चाहे कुछ भी हो जाए आनन्द तुम्हारा स्वभाव है।

खेद, ताप, संताप, तनाव, शोक, चिन्ता, भय आदि सब दुःख के ही विविध प्रकार हैं और तुम इन सबसे ऊपर उठकर सदैव आनन्द की आराधना में लगे रहो, इस प्रकार दीपावली ज्ञान और आनन्द के महत्व को ही रेखांकित करने वाला महापर्व है। काश, हम सब इस सन्देश को भलीभांति सुनें–समझें।

✧✧✧

दीपावली महापर्व

— श्री उमेश जैन शास्त्री

दीपावली किसी विशेष सम्प्रदाय का पर्व नहीं है। यह पर्व तो समस्त विश्व का पर्व है। इस दिन हम दीप जलाते हैं और अपने घरों में प्रकाश करते हैं। यह पर्व हमें यही बतलाता है कि अपने हृदय में सत्य का प्रकाश करो और ज्ञान रूपी दीपक जलाओ। दीपावली भारतीय संस्कृति का प्रतीक पर्व है। इसके पीछे अनेक महापुरुषों के जीवन एवं कार्यो की घटनाओं का अपूर्व इतिहास है। भगवान महावीर, भगवान राम, आदि महापुरुषों का सम्बन्ध दीपावली पर्व से है। दीपावली का महत्व भारतीय संस्कृति रूप में भी है। यह पर्व स्वच्छता व साफ–सफाई का पर्व है। इस दिन लोग अपने घरों में दीपकों द्वारा प्रकाश करते हैं जो रोशनी देखने योग्य होती है।

दीपावली धार्मिक दृष्टिकोण से जैन धर्मानुसार जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करके आत्मा के वास्तविक शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त किया था। भगवान महावीर ने मोह रूपी शत्रु को जीतने के ध्येय से उत्तम ध्यान को जयशील अस्त्र बनाया। उनके बारह वर्ष शुभोपयोग एवं धर्म में व्यतीत हुये। अभी तक उन्होंने झपक पर आरोहण नहीं किया था। इस श्रेणी पर आरोहण करने के पूर्व धर्म ध्यान होता है। इस पर चढ़ने वाले के शुक्ल ध्यान होता है। उन्हें केवलज्ञान हुआ। वे सर्वज्ञ हो गए। केवलज्ञान के बाद महावीर ने तीस वर्ष अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना), अचौर्य (चोरी न करना), एवं ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। उनका मुख्य उपदेश था कि सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए चाहो, बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ, अपनी आत्मा के साथ युद्ध करो। मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से ही महान बनता है। किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है। किन्तु भगवान महावीर स्वामी का मानना था कि स्वर्ग भी संसार है और बन्धन है। इन्द्रियों के द्वारा जब तक सुख और दुख का अनुभव होता रहेगा, तब तक संसार रहेगा इसलिए अतिन्द्रिय सुख को प्राप्त करना होगा। उन्होंने अपनी साधना का निष्कर्ष बतलाया कि शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों ही बन्धन हैं। यदि मुक्ति चाहिए तो इन दोनों से रहित होना ही योग्य हैं। उनके सिद्धान्त जीवन में उतार कर ही समाज एवं राष्ट्र का भला हो सकता है।

पन्द्रह अगस्त

— (स्मृतिशेष) श्री रमा कान्त जैन

पन्द्रह अगस्त हमारा **स्वतन्त्रता दिवस** तो है ही, किन्तु वह एक **बलिदान दिवस** भी रहा, इसकी स्मृति शायद ही कुछ को हो। 9 अगस्त सन् 1942 ई. को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध **भारत छोड़ो आन्दोलन** छेड़ा गया था और महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। गांधी जी और अन्य बड़े नेता तो तुरन्त गिरफ्तार कर नज़रबन्द कर लिये गये थे और देशप्रेमी असंख्य उत्साही नौजवान अपने ढंग से उस आन्दोलन में प्राण फूंकने में जुट गये थे। कई को अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ी। यहां उस आन्दोलन में 15 अगस्त, 1942 ई., को पुलिस की गोली खाकर अपने प्राण न्यौछावर करने वाले दो शहीदों — सातापा टोपण्णावर और उदयचंद जैन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित है।

शहीद सातापा टोपण्णावर

सातापा टोपण्णावर का जन्म कर्णाटक राज्य के बेलगांव जिले की तहसील मुरगुड में ग्राम कडवी शिवापुर में सन् 1914 ई. में एक सामान्य जैन परिवार में हुआ था। उनके पिता भरमापा किसान थे। सन् 1930 ई. में, जब सातापा मात्र 16 वर्ष के थे, गांधी जी के 'असहयोग आन्दोलन' से इतना प्रभावित हुए कि मुरगुड के एक 'स्वयं सेवक संघ' में अपना नाम लिखा उन्होंने अपने क्रान्तिकारी जीवन का श्रीगणेश कर दिया। वह पास—पड़ोस के ग्रामों में राष्ट्रीय जन—जागरण का कार्य करने लगे। अपने गांव शिवापुर में भी उन्होंने एक 'स्वयं सेवक पंथ' गठित कर लिया। उनकी इन गतिविधियों के कारण सरकारी अधिकारियों द्वारा उन्हें अनेक बार डराया—धमकाया गया, पर वह नहीं माने। सन् 1940 ई. में वह दो बार जेल में भी बन्द किये गये, किन्तु उनके उत्साह में कोई कमी नहीं आई, अपितु देशप्रेम—भावना दृढ़तर होती गई। 12 अगस्त, 1942 ई. को सातापा और उनके साथियों ने 'ग्राम—स्वातन्त्र्य' के नाम पर स्थानीय ग्राम पंचायत कार्यालय पर कब्जा कर लिया। इसकी खबर अधिकारियों को लग गई।

पन्द्रह अगस्त की प्रातःकाल ग्राम कडवी शिवापुर में सातापा के नेतृत्व में 50—60 युवकों की एक टोली एक हाथ में तिरंगा झण्डा लिये श्यामलाल पार्षद रचित गीत **"विजयी विश्व तिरंगा प्यारा**
झंडा ऊंचा रहे हमारा।।"

गाती हुई और बीच–बीच में बुलन्द आवाज में 'वन्दे मातरम्' नारा लगाती हुई प्रभातफेरी निकाल रही थी। अकस्मात 50 बन्दूकधारी और 10–15 लाठीधारी पुलिस बल ने आकर उस टोली को घेर लिया। संकट सम्मुख आया देख युवकों ने जयकारा लगाया – 'भारत माता की जय'। एक पुलिस अधिकारी गरजा, "झण्डा नीचे करो, नहीं तो नाहक गोली खाओगे।" सातापा झुके नहीं, प्रत्युत आवेशपूर्ण शब्दों में उत्तर दिया, "चाहे जान भले ही चली जावे, झण्डा नीचा नहीं करेंगे।" अधिकारी इस उत्तर से चिढ़ गया। उसने मजिस्ट्रेट का हुक्म दिखाया और फिर चेतावनी दी। सातापा ने कड़ककर प्रत्युत्तर दिया – "प्राण गेलातरी बेहेत्तर, पण झेंडा खाली घेणार नाही, घेऊं देणार नाही।" साथी युवक भी गर्ज़ना करने लगे –

तिरंगी झेंड्याचा विजय असो।
स्वतंत्र भारताचा विजय असो।।

अंग्रेज अफसर यह सुनकर आग–बबूला हो गया और उसने गोली चलाने का आदेश दे दिये। धांय...धांय...दो–तीन गोलियां चलीं, जो आगे खड़े सातापा को लगीं। उनकी छाती से रक्तधार फूट पड़ी और मुंह से 'वन्दे मातरम्!'। वह गिर पड़े और घर लाते–लाते उनके प्राण–पखेरू उड़ गये। उनके कई युवा साथी गिरफ्तार कर लिये गये और ग्राम पंचायत कार्यालय को पुनः अधिकार में ले लिया गया। इस वीर शहीद का पुण्य स्मरण करते हुए मराठी पत्र **सन्मति** ने अगस्त 1957 के अंक में लिखा था कि "लगभग 28 वर्षीय चौड़े सीने का ऊंचा–पूरा उत्साही व पानीदार (तेजस्वी) सातापा कड़वी शिवापुर का ही नहीं मुरगुड का भी भूषण और स्फूर्ति–स्थान बन गया था।... क्रूर काल ने उसके फलते–फूलते जीवन को छीन लिया, किन्तु उसकी हुतात्मा को तेजस्वी मरण दिया। कड़वी शिवापुर ही नहीं भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में उन्होंने अपने को अमर कर लिया, इसमें सन्देह नहीं।"

शहीद उदयचंद जैन

उदयचंद जैन का जन्म मध्य प्रदेश में मण्डला नगर के निकट महाराजपुर ग्राम में 10 नवम्बर, 1922 ई., को हुआ था। उनके पिता सेठ त्रिलोक चंद और माता खिलौना बाई थी। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा महाराजपुर में हुई। तदनन्तर 1936–37 ई. में आगे अध्ययन हेतु मण्डला के जगन्नाथ हाई स्कूल में प्रवेश लिया। बलिष्ठ शरीर, ऊंची कदकाठी वाले उदयचंद मेधावी छात्र होने के साथ–साथ एक ओजस्वी

वक्ता भी थे। अपनी नेतृत्व क्षमता के कारण वह छात्र–संघ के अध्यक्ष भी चुने गये थे।

अगस्त 1942 के आन्दोलन के समय उदयचंद जी की आयु मात्र 19 वर्ष थी। वह मैट्रिक के छात्र थे। मण्डला नगर में स्वतन्त्रता आन्दोलन की लहर पहले से ही लहरा रही थी। 14 अगस्त 1942 ई., को जगन्नाथ हाईस्कूल के छात्रों ने हड़ताल कर कक्षाओं का बहिष्कार किया। साथियों से आगे के कार्यक्रम पर सलाह मशविरा करते रहने के कारण उदयचंद उस दिन अपने घर भी नहीं गये। अगले दिन 15 अगस्त को छात्रों ने नर्मदागंज से विशाल जुलूस निकाला। जिलाधीश कार्यालय पहुंचकर जुलूस सभा में परिवर्तित हो गया। जब उदयचंद सभा को सम्बोधित कर रहे थे पुलिस ने बर्बरता से लाठी चलानी शुरू कर दी। अनेक लोग पुलिस लाठी के शिकार हुए। जुलूस तितर–बितर हो गया। जब लोग भागने लगे उदयचंद के एक साथी गोपाल प्रसाद तिवारी ने उनसे कहा, "कहीं ऊंचे स्थान पर खड़े होकर जनता को प्रदर्शन करते रहने को कहो, मैं भीड में घुस कर लोगों को इकठ्ठा करता हूं।" तब उदयचंद कुएं की पनघट पर चढ़ जनता से शान्तिपूर्ण प्रदर्शन जारी रखने का अनुरोध करने लगे। जनता पुनः इकठ्ठी होकर नारे लगाने लगी। मजिस्ट्रेट मालवीय ने लोगों को घर चले जाने की चेतावनी दी, अन्यथा गोली चलाने की मंशा बताई। इस पर कुछ लोगों ने उन्हें पुलिस ज्यादतियों के लिये लताड़ा। उप जिलाधीश ने पुलिस को गोली चलाने का आदेश दे लिया। वीर उदयचंद ने अपनी छाती खोल दी, कमीज को फाड़ते हुए खींचा जिससे एक बटन टूट गया। उन्होंने पुलिस को ललकारा, "गोली चला दी जाये, वह उसे झेलने के लिए तैयार हैं।" पुलिस की गोली चली और उनके पेट को चीरते हुए शरीर में घुस गई। 'भारत माता की जय', 'तिरंगे झण्डे की जय' के साथ उदयचंद गिर पड़े और खून की नदी बह चली। लोग उन्हें उठाने दौड़े, पर पुलिस ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। लाठियों के स्ट्रेचर पर डाल बेहोश उदयचंद को शल्य चिकित्सा हेतु समीप स्थित शासकीय अस्पताल पुलिस ले गई। शल्य चिकित्सा के उपरांत भी उदयचंद होश में नहीं आये। रात भर तड़पते रहे और 16 की प्रातः वीरगति को प्राप्त हो गये। नगर के सभी वर्ग के लोग उनके दर्शन को अस्पताल दौड़ पड़े। उनकी शव–यात्रा में नगर के सभी जाति–वर्ग के लगभग नौ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस वीर शहीद की स्मृति में मण्डला में उदय चौक पर त्रिकोणाकार लाल लाट का 'उदय स्तम्भ' बना है और नगर पालिका

मण्डला द्वारा 'उदय प्राथमिक विद्यालय' संचालित है। जगन्नाथ हाईस्कूल में उनकी प्रतिमा स्थापित की गई है तथा उनके ग्राम महाराजपुर में समाधि बनाई गई है जहां प्रतिवर्ष 16 अगस्त को मेला लगता है।

(15 अगस्त का प्रचार **स्वतंत्रता दिवस** के रूप में है। 1947 ई., में इस तारीख को ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य के एक टुकड़े को 'इण्डियन डोमीनियन' के नाम से सत्ता हस्तांरित की गई थी। उस समय के भारतीय जन जीवन के स्वतः–स्थापित भाग्य–विधाता पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह तारीख इसलिए चुनी थी क्योंकि 1945 में इसी तारीख को ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड माउण्टबेटेन ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान को परास्त किया था और युद्ध की समाप्ति सूचक विजय प्राप्त की थी। पं. नेहरू का इस तारीख को चुनना उनके द्वारा ब्रिटेन के प्रति अपना कृतज्ञता–ज्ञापन और निष्ठा–प्रज्ञापन का सूचक था। स्वतंत्रता हमने हासिल नहीं की थी वरन् यह हमें हमारे पुराने स्वामी ने अपनी उदारतापूर्वक प्रदान की थी। इसमें कुछ उपयोग नेहरू जी का लेडी एडविना माउण्टबेटेन के साथ प्लेटॉनिक प्रेम सम्बन्ध का भी था।

1942 में जिस 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का सूत्रपात करने का श्रेय महात्मा गांधी को दिया जाता है वह किसी प्रकार भी अंग्रेजों को भारत से सत्ता विरत होने के लिए प्रभावी नहीं था। अंग्रेजी शासन ने महात्मा गांधी तथा पं. जवाहरलाल नेहरू एवं अन्य प्रसिद्ध कांग्रेसी नेताओं को आगा खां पैलेस में निरुद्ध करके सरकारी मेहमान का रुतबा दिया था। वह कैदखाना नहीं था। निरुद्ध नेताओं की सुख–सुविधा का पूरा ख्याल रखा जाता था, जैसे कि गांधी जी के लिए बकरी का दूध।

क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित और स्वतंत्रता प्राप्ति के आदर्श से उन्मत्त युवावर्ग में तथापि एक आन्दोलनात्मक आक्रोश पैदा हुआ। उन्होंने गांधी जी के 8 अगस्त 1942 के भाषण के वास्तविक अर्थबोध को अनदेखा करते हुए केवल "करो या मरो" के नारे को प्रबोधात्मक रूप में ग्रहण किया और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपने सीमित क्षेत्रों में आन्दोलन छेड़ दिए। उसी के फलस्वरूप ऊपर लेख में जिन दो युवकों का उल्लेख है उसी तरह के और भी बहुत से युवकों ने अपने प्राणों की आहुति दी होगी। सन् 1942 के प्रत्यक्षदर्शी हम भी रहे हैं। तब हमारी वय मात्र 10 वर्ष थी। लखनऊ में कान्यकुब्ज कॉलेज के पीछे से रेलवे लाईन जाती थी और उससे युद्ध के लिए सामान भेजा जाता था। ~~कान्यकुब्ज~~ कॉलेज के छात्रों ने रेलवे लाईन उखाड़ दी ताकि अंग्रेजों की युद्ध सामाग्री न जा सके। एक भारतीय दारोगा ने, जो अब दिवंगत हैं अतः उनका नाम नहीं लिया जायेगा, छात्रों पर भीषण दण्डात्मक अत्योचार किया था। तब यह भी सुना था कि लखनऊ विश्वविद्यालय को नगर से जोड़ने वाले मंकी ब्रिज़ (जो अब हनुमान सेतु कहलाता है) पर सेना का नियंत्रण था ताकि विश्वविद्यालय के छात्रों पर नियंत्रण रखा जा सके।

यह विस्मय की बात है कि स्वाधीन भारत के नागरिक 1942 में हुए बलिदानों को भूल चुके हैं और सत्ता प्राप्ति से कृतज्ञ हुए कृपापात्र नेतृत्व वर्ग द्वारा प्रचारित इतिहास को ही जानते हैं। अन्यथा 15 अगस्त **बलिदानी दिवस** के रूप में प्रचारित होता और इसी आधार पर, न कि लॉर्ड माउण्टबेटेन के प्रति कृतज्ञता के आधार पर, **स्वतंत्रता दिवस** प्रचारित किया जाता। – डॉ. शशि कान्त)

जैनधर्म का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण

– डॉ. शशि कान्त

उड़ीसा प्रदेश के भुबनेश्वर के पास उदयगिरि–खण्डगिरि की पहाड़ियों में कुछ प्राचीन गुफायें है जिनका निर्माण ईसा पूर्व 2री शती में किया गया था। पूर्वी भारत में इस प्रकार पहाड़ में से काटकर बनाई गई गुफाओं का यह अब तक ज्ञात सर्व–प्राचीन उदाहरण है। इनमें से अधिकांश में मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों से मिलती–जुलती ब्राह्मी लिपि में लेख हैं। इन अभिलेखों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उदयगिरि पर हाथीगुम्फा के मुख–भाग पर उत्कीर्ण 17 पंक्तियों का राजा–खारवेल–सिरि का लेख है जिसमें उसके राज्यकाल के 13 वर्षों का क्रमिक विवरण है।

हाथीगुम्फा अभिलेख में तीन घटनाओं के समय का उल्लेख है, यथा – वर्ष 103 में कलिंग नगरी में नन्दराजा द्वारा तनसुलियवाट नहर का निकालना, वर्ष 113 में तमिल देशों के संघ का गठन, और वर्ष 165 में द्वादशांग मुख–कल (श्रुत) की व्युच्छित्ति। ऐतिहासिक घटनाओं के तारतम्य की दृष्टि से यह काल निर्देश महावीर निर्वाण की काल–गणना के अनुसार किया गया प्रतीत होता है। उक्त काल गणना के प्रयोग का यह अभिलेख प्रथम पुष्ट प्रमाण माना जा सकता है।

लेख का प्रारम्भ "**नमो अहरहंतानं नमो सवसिधानं**" से होता है। पंच नमस्कार मंत्र का यह प्राचीनतम लिखित रूप है। "**णमो अरहंताणं, नमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं**" का जैनों में वही महत्व और लोकप्रियता है जो "**बुद्धं सरणं गच्छामि**" की बौद्धों में और गायत्री मंत्र की वैदिकों में है। इस उल्लेख से यह भी पुष्ट होता है कि शुद्ध पाठ "अरहंत" है न कि "अरिहंत"।

अरहंत की प्राचीनतम लिखित व्याख्या भी इसी लेख की पंक्ति 14 में मिलती है। यह व्याख्या "पखिण–संसितेहि" है जिसका संस्कृत रूपान्तर "प्रक्षिप्त–संसृताः" होगा। इसका अर्थ है कि अरहंत वह है जिसने आवागमन छोड़ दिया है। निम्नलिखित गाथा में आचार्य कुन्द–कुन्द ने भी अरहंत की इसी प्रकार व्याख्या की है –

जर–वाहि–जम्म–मरणं च उ–ग–इ–गमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो।।

अर्थात् अरहंत वह है जिसने वृद्धावस्था, रोग, जन्म—मृत्यु, आवागमन, पुण्य व पाप, और कर्मो के दुष्प्रभाव को नष्ट करके सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

मुनि—आर्यिका—श्रावक—श्राविका रूप चतुर्विध संघ का निर्देश भी इस लेख में मिलता है। खारवेल स्वयं को **उवासग** (उपासक, श्रावक) कहता है और यह व्याख्या भी करता है कि श्रावक वह है जो व्रतों का पालन करता है और पूजा में रत रहता है। यह भी संकेत है कि व्रतों के पालन से दिव्य तेज की प्राप्ति होती है।

जीव और देह (अर्थात् पुद्गल अजीव) के द्वैत का भी उल्लेख है। खारवेल का यह कथन कि उसका जीव देह पर आश्रित है, जैन दर्शन में आत्मा की स्वतंत्र सत्ता और जीव—अजीव के पारस्परिक सम्बन्धों की धारणा से पूरी तरह मेल खाता है।

"श्रमण" की व्याख्या "सुविहित" की गई है। आचार्य कुन्द—कुन्द ने जैन साधु की जो विशेषता निम्नलिखित गाथा में बताई है वह सुविहित की ही व्याख्या है।

देहादिसंगरहिओ माणकसायेहिं सयलपरिछत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।।

अर्थात् वास्तव में साधु वह है जिसके पास कोई परिग्रह नहीं है, जिसने मान अर्थात् अहंकार को पूरी तरह छोड़ दिया है और जो पूर्णतः स्वआत्मा में लीन है।

जैन साधुओं के चार प्रकारों का भी यहां उल्लेख है। सर्व प्रथम श्रमण का उल्लेख है जो मात्र आत्म साधना करते थे और संसार से पूर्णतः अलिप्त थे। उनके बाद ज्ञानी और तपस्वी—ऋषि का उल्लेख है। ज्ञानी श्रुत के ज्ञाता थे और तपस्वी—ऋषि तप—साधना पर विशेष बल देते थे। अन्त में संघयन का उल्लेख है जो संघनायक थे, अतः सांसारिक मामलों से पूरी तरह अलिप्त नहीं रह सकते थे और इसी लिए उन्हें सबसे अन्त में उल्लिखित किया गया।

लगभग 172 वर्ष ईसा पूर्व, अपने राज्य काल के 13वें वर्ष में, खारवेल ने जैन साधुओं की एक सभा बुलाई। इस सभा की जानकारी का स्रोत एकमात्र यही अभिलेख है, दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों की साहित्यिक अनुश्रुतियां इसके विषय में मौन हैं। संभवतः इस सभा का उद्देश्य संघ—भेद को रोकने और दोनों सम्प्रदायों में तात्विक विवादों पर समझौता कराने का एक महत् प्रयास था। संघ—भेद के पोषक दोनों ही सम्प्रदायों के परवर्ती साहित्यकारों ने इस समझौते के प्रयास को भुला देना

ही यथेष्ट समझा प्रतीत होता है और इसीलिए उसकी कोई चर्चा उन्होंने नहीं की। ईस्वी सन् के प्रारम्भ के लगभग मथुरा में आरातिय यतियों या यापनियों के रूप में एक वर्ग ऐसा था जो संघ–भेद को गर्हित समझता रहा। ऐसा सम्भव है कि उस वर्ग ने इस सभा की स्मृति को जीवित रखा हो परन्तु उसका कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है।

यह सभा विजयचक्र नामक प्रशासकीय खण्ड में कुमारीपर्वत पर, जो उदयगिरि का प्राचीन नाम था, अयोजित की गई थी। इसमें सभी दिशाओं से आये 3500 साधुओं ने भाग लिया था। पर्वत के ऊपर अरहंत की निषिद्या के समीप का वराकार सभा स्थल था। यह वराकार रानी सिधुला द्वारा निर्मित निषिद्या से सटा हुआ था। रानी सिन्धुला की निषिद्या मंचपुरी गुफा की ऊपरी मंजिल रही प्रतीत होती है जो कि हाथीगुम्फा के सम्मुख दक्षिण–पूर्व को स्थित है। हाल ही में पुरातात्विक खुदाई से हाथीगुम्फा के ऊपर एक पूजा गृह के अवशेष प्रकाश में आये है जो सम्भवतः अरहंत निषिद्या के प्रतीक हैं। इस प्रकार मंचपुरी और हाथीगुम्फा के बीच के स्थल को चीन्हा जा सकता है।

सभा मंडप के सम्मुख एक वैदूर्य गर्भित चौमुखा स्तम्भ स्थापित किया गया था। यह मानस्तम्भ का प्रतिरूप रहा प्रतीत होता है। सभा मंडप की रचना समवसरण के अनुरूप की गई प्रतीत होती है। इस सभा में द्वादशांग की वाचना की गई थी। साहित्य में वाचना का प्रयोग ऐसी सभाओं के लिए भी किया गया है।

दोनों ही सम्प्रदाय इस बारे में एक मत हैं कि केवली प्रणीत समस्त श्रुत द्वादशांग रूप थी। खारवेल ने भी इसका उल्लेख "चोयठ–अंगं" अर्थात् 4 + 8 = 12 अंग, ही किया है और इस प्रकार इस अनुश्रुति का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण इसी लेख में प्राप्त होता है। श्रुत की व्युच्छित्ति का उल्लेख इस लेख में महावीर निर्वाण के 165 वर्ष में किया गया है जो भी दोनों ही सम्प्रदायों की साहित्यिक परम्पराओं से मेल खा जाता है। इस सभा का उद्देश्य अवशिष्ट श्रुत को संकलित और संरक्षित करना रहा प्रतीत होता है। कुछ ही दशक पूर्व बौद्धों द्वारा बुद्ध वचनों के संकलन का ऐसा ही एक प्रयत्न मौर्य सम्राट अशोक के सरंक्षण में मगध में किया जा चुका था।

इस लेख से यह भी ज्ञात होता है कि जैनों में पूजा की परिपाटी उस समय भी प्रचलित थी। चार प्रकार के पूजा गृहों का उल्लेख इस लेख में है – काय–निषिद्या अर्थात अरहंत के अवशेषों पर निर्मित निषिद्या जैसी कि खारवेल ने स्वयं बनवाई थी, निसया या चैत्य जो साधुओं के निवास स्थान

का ही एक अंग होता था जैसा कि रानी सिन्धुला ने बनाया था, तूप या स्तूप जिसकी खारवेल ने मथुरा में वन्दना की थी, और संनिवेश जहां जिन प्रतिमा विराजमान होती थी और जिसमें खारवेल ने मगध में पूजा की थी।

इस लेख से यह भी ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व 424 में कलिंग में जैनों में मूर्ति पूजा का प्रचलन था क्योंकि उस समय नन्दराजा जिन प्रतिमा को कलिंग से मगध उठा लाया था और उसे उसने अपनी राजधानी में प्रतिष्ठित किया था।

यह भी ज्ञात होता है कि मथुरा उस समय जैनों का एक तीर्थ स्थान था जहां खारवेल ने स्तूप की पूजा की थी और "सव गहनं" नामक उत्सव किया था। "सव–गहनं" का शुद्ध रूप "सर्व–ग्रहणम" हो सकता है जिसका अर्थ सब कुछ की प्राप्ति या सब कुछ का त्याग, दोनों ही हो सकते हैं। दूसरा अर्थ सन्दर्भ की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त उत्सव के समय भर के लिये उसने अपने को सांसारिक कार्यों से स्वेच्छा से अलग कर लिया था।

इस लेख में चार चिन्ह उत्कीर्ण मिलते हैं जिनमें से स्वास्तिक और नन्द्यावर्त जैन धर्म से संबंधित हैं। इनका उल्लेख अष्ट प्रतिहार्यों में आता है।

साथ की गुफाओं में जो लेख हैं उनसे यह भी ज्ञात होता है कि उस काल में जैन साधुओं के आवास के लिए पहाड़ काट कर गुफायें बनाई जाती थीं।

उपर्युक्त विवरण से विदित होगा कि इस लेख में जैन धर्म, संघ, साहित्य और इतिहास के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य हैं और उनके लिए यही प्राचीनतम लिखित आधार है, अतः जैन इतिहास की दृष्टि से इसका महत्व अप्रतिम है।

(यह लेख 1967 में **गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रंथ** में प्रकाशित हुआ था। उनकी 50वीं पुण्यतिथि पर यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख पर हमारी पुस्तक 1971 में प्रकाशित हुई थी और उसका द्वितीय संस्करण 2000 ई. में D.K. Printworld (P) Ltd., नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित किया गया है। पुस्तक का नाम है :The Hāthīgumphā Inscription of Khāravela and The Bhabru Edict of Aśoka.

इस लेख का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवदान **णमोकार मंत्र** के मूल रूप को प्रख्यापित करना है। आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमन मूल मंत्र में नहीं था और यह काफी बाद में साधु संस्था के मान–पोषित सदस्यों द्वारा श्रावक समुदायों को अपने प्रभाव में लाने के लिए किया गया था।)

भरत : एक शब्द—यात्रा

— श्री वेद प्रकाश गर्ग

जैन मान्यतानुसार त्रिषष्टिशलाका महापुरुषों में बारह चक्रवर्तियों की भी गणना होती है। इन बारह में सम्राट भरत प्रथम चक्रवर्ती थे। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ के शत पुत्रों में भरत ज्येष्ठ पुत्र थे। ऋषभदेव की पत्नी सुमंगला इनकी माता थी।[1] भरत ही ऋषभदेव के उत्तराधिकारी बने। भरत के पीछे उनके पितामह 14वें अर्थात् अंतिम कुलकर नाभिराय की तथा पिता ऋषभदेव की प्रतापी परम्परा थी।

ब्रह्मा—पुत्र आदि—मनु स्वायम्भव के वंश में राजा प्रियव्रत हुए। वह बड़े वीर एवं प्रजापालक थे। इनका उत्तराधिकारी अग्नीध्र हुआ। यह प्रियव्रत का दायद पुत्र था (अर्थात् कन्या का पुत्र था), जिसे जम्बूद्वीप का शासक बनाया गया था। अग्नीध्र के नौ पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र नाभि थे।[2] ये अत्यंत प्रतापी एवं तेजस्वी थे। नाभिराय के जीवन—काल में ही भोगभूमि की समाप्ति और कर्मभूमि का आरम्भ हुआ। उन्होंने युग—प्रवर्तन किया। उनका एक नाम 'अजनाभ' भी था। उनके नाम पर ही इस कार्यभूमि (आर्यखंड) को 'नाभिखण्ड' अथवा 'अजनाभवर्ष' कहा गया।[3] यह भारतवर्ष का प्राचीन नाम है।[4]

अयोध्या नरेश महाराज नाभिराय की पत्नी मरुदेवी के गर्भ से प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म अयोध्या में हुआ।[5] उनका जन्म दो युगों की संधि—बेला अर्थात् मानव सभ्यता के प्रथम चरण में हुआ था, जब भोगभूमि का अन्त और कर्मभूमि का प्रारम्भ हो रहा था। ऋषभदेव ने सामाजिक जीवन की समुचित व्यवस्था कर उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कृषिकर्म में 'वृषभ' की प्रतिष्ठा प्रतिपादित की और स्वयं भी 'वृषभदेव' कहलाए। 'वृषभ—लांछन' उनकी पहचान का विशेष चिन्ह है।[6]

ऋषभदेव क्षात्र—धर्म के प्रथम प्रवर्तिता थे।[7] प्राचीन भारत के क्षत्रियों का आद्य वंश उनके नाम पर ही 'इक्ष्वाकु—वंश' कहलाया।[8] अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही उन्हें एक श्रेष्ठ राजा तथा विष्णु के चौबीस अवतारों में आठवां अवतार माना गया है।[9] ऋषभदेव अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजपद पर अभिषिक्त कर स्वयं संन्यस्त हो गये थे।[10] ऋषभदेव ने भरत को हिमवान (हिमालय) का दक्षिण देश (क्षेत्र) शासन के लिए दिया था।[11] वस्तुतः ऋषभ परमहंस थे। वे न केवल जैन समाज के ही, अपितु सम्पूर्ण आर्य जाति के उपास्य देव हैं। उनका जीवन

ही स्वाभाविक धर्म का प्रवर्तक है। उनके द्वारा प्रतिपादित और आचरित प्रवृत्ति धर्म ही वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का मूलाधार है और यही अनुकरणीय है। जैन समाज में एकान्तिक निवृत्ति (विकृत निवृत्ति धर्म) की स्थिति बाद का प्रभाव है।

धर्म–प्रवर्तक, आदि–जिन ऋषभदेव के सुपुत्र एवं उत्तराधिकारी अयोध्या नरेश भरत प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। वे विनीत, उदार, क्षत्रिय गुणोपपेत तथा सर्वहितचिंतक थे। उन्होंने अद्वितीय सुंदरी कन्या पांचजनी (विश्व रूपात्मजा पंचजना) के साथ विवाह किया था।[12] उनके बड़े पुत्र का नाम सुमति था।[13] इसी को राज्य देकर भरत ने भी सन्यास ले लिया था।

भरत ने षट्खंड पृथ्वी को जीता और समुद्र–पर्यन्त पृथ्वी के सम्राट बने। अपनी दिग्विजय–यात्रा के प्रसंग में उनका अपने भाई बाहुबली से भी संघर्ष हुआ। प्रतापी बाहुबली के महत् त्याग तथा भरत की विनम्रता से संघर्ष की स्थिति समाप्त हुई। बाहुबली दृढ़ तपस्वी और मोक्षगामी महासत्व थे।[14] अपने प्रेरक व्यक्तित्व के कारण उन्हें जैन पुराण–पुरुषों में अद्वितीय एवं अविस्मरणीय स्थान प्राप्त है। उनका स्थान बहुत ऊंचा है।

भरत चक्रवर्ती[15] लोक–कल्याण की चिन्ता में सदा मग्न रहते हुए मानवता को सुदृढ़ करने में लगे रहते थे। प्रजा की चिन्ता उनकी अपनी चिन्ता बन गई थी। अत्यंत वात्सल्य भाव से उन्होंने प्रजा का पालन–पोषण किया। वे सच्चे अर्थों में प्रजापालक थे। महान वीर्यवान, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़व्रती, शस्त्र एवं शास्त्रों के ज्ञाता, निग्रह–अनुग्रह में समर्थ तथा सम्पूर्ण प्राणियों के हितैषी वे थे। वे वैभव–सम्पदा होते हुए भी वैरागी थे। उनका मन संसार से विरक्त था। उन्होंने एक साथ राग और विराग, भोग और योग, जगत और मोक्ष का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। अन्त में दीक्षा लेते ही उन्हें कैवल्य ज्ञान हो गया।[16] वास्तव में वे अद्वितीय थे। उन्हीं के नाम से यह देश 'अजनाभवर्ष' के स्थान पर 'भारतवर्ष' कहलाया।[17]

ऋषभ–पुत्र भरत का वर्णन ऐसे तो जैन परम्परा तथा ब्राह्मण परम्परा – दोनों में मिलता है, किन्तु दोनों परम्पराओं में उनके जीवन का चित्रण अपनी–अपनी दृष्टि के अनुसार अलग–अलग रीति से किया गया है। इसी कारण, जैन धर्म ग्रंथों तथा ब्राह्मणीय धर्मग्रंथों में वर्णित उनके जीवन–चरित्रों में बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ तथ्यात्मक अन्तर भी मिलते हैं। जैन परम्परा में उनका वर्णन शलाकापुरुषों के अन्तर्गत प्रथम चक्रवर्ती के रूप में हुआ है और उनका सारा जीवन पिता से प्राप्त वृत्त के अनुरूप है। वे निवृत्ति धर्म के अनुगामी हैं और यही स्वाभाविक निवृत्ति

धर्म है, किन्तु इसमें कहीं–कहीं चारित्र–लेखकों द्वारा प्रवृत्ति धर्म का रंग भी चढ़ा दिया गया है।

ब्राह्मणीय पौराणिक साहित्य में ऋषभ–पुत्र भरत का उल्लेख 'जड़ भरत' नामक एक राजर्षि महायोगी के रूप में हुआ है। वहां उनके तीन जन्मों की कथा वर्णित है। राजा भरत प्रजापालक, दयालु एवं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इनकी प्रजा सुखी थी। इन्होंने अनेक यज्ञों के द्वारा यज्ञपुरुष की आराधना की थी। ये परम भागवत (भगवद् भक्त) थे। इन्होंने भक्तिमार्ग का अवलम्बन लेते हुए अनेक वर्षों तक प्रजाहित साधन में रत रहकर राज्य किया। अन्त में राज्य छोड़कर ये तप हेतु पुलहाश्रम चले गए थे।

आश्रम में रहते हुए इन्हें एक हरिण शावक के प्रति मोह हो गया था और मृत्यु के समय भी इनका चित्त उसी में लगा रहने के कारण इन्हें अगले जन्म में मृग–योनि में जन्म लेना पड़ा। तत्पश्चात् तृतीय जन्म में अंगिरा कुल के एक ब्राह्मण के यहां इनका जन्म हुआ। इन्हें पूर्व जन्मों का ज्ञान था। अतः ये संसार की आसक्ति से बचने के लिए जड़वत् (अबोध, मूढ़ जैसा) व्यवहार करते हुए मत्तचित्त होकर ब्रह्म–चिन्तन में निमग्न रहते थे। इसीलिए इन्हें 'जड़ भरत' की संज्ञा मिली। एक बार लोगों ने इन्हें पागल समझकर सौवीर राजा की पालकी में लगा दिया। मार्ग में इनका राजा से संवाद हुआ अर्थात् ज्ञानपूर्ण बातें की तो राजा ने इन्हें तत्वज्ञानी जानकर पालकी से उतर इनसे क्षमायाचना की। अन्त में इन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई। इनके त्यागमय महान् चरित्र का अनुकरण किसी के द्वारा संभव न हो सका।[18]

श्रीमद्भागवत् में (पंचम स्कन्द के द्वितीय अध्याय से चतुर्दश अध्याय तक) जहां ऋषभदेव का जीवन–चरित्र विस्तार से वर्णित है, वहीं उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत के यश का भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। अन्य पुराणों में भी उनका उल्लेख हुआ है। इतिहास में भरत को आर्य–संस्कृति का पोषक कहा गया है। वे परम दयालु, आत्मयोगी, परम भागवत् भक्त एवं मोक्षमार्गी–श्रेष्ठ थे।

वैदिकधारा के ग्रंथों में प्रजापति ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत को ही यद्यपि इस देश के नाम 'भारतवर्ष' का मूलाधार माना गया है, किन्तु कुछ ऐसे विरोधात्मक उल्लेख भी मिलते हैं जिनके संदर्भ से कतिपय विद्वानों ने दौष्यन्ति भरत के नाम को मूलाधार स्वीकार किया है।[19] परन्तु प्राचीन साहित्य से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती। उसके अनुसार तो ऋषभ–पुत्र भरत 'भारत' नाम के आधार सिद्ध होते हैं। **'अग्नि पुराण'** (10/10–11);

'मार्कण्डेय पुराण' (प0 / 39–42); **'नारद पुराण'** (पूर्वखंड, अध्याय 48); **'लिंग पुराण'** (47 / 19–23); **'स्कन्द पुराण'** (माहेश्वर खंड कौमार खंड, 37 / 57); **'शिव पुराण'** (37 / 57); **'वायु पुराण'** (पूर्वार्ध, 30 / 50–53); **'ब्रह्माण्ड पुराण'** (पूर्व 2 / 14); **'कूर्म पुराण'** (अध्याय 49); **विष्णु पुराण'** (द्वितीयमांश, अध्याय 1); **'वाराह पुराण'** (अध्याय 76); **'मत्स्य पुराण'** (114–5–6) आदि पुराणों के अतिरिक्त **श्रीमद्भागवत** (5 / 4 / 9) में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत महायोगी थे और उन्हीं के नाम पर यह देश 'भारतवर्ष' कहलाया – **येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्ष भारतमिति व्यापदिशन्ति।** उक्त के अतिरिक्त जैन धर्म के प्रायः सभी पुराण–ग्रंथ एवं अन्य साहित्य इस तथ्य के साक्षी हैं कि ऋषभदेव के पुत्र भरत ही 'भारतवर्ष' नाम के मूलाधार हैं। जैन साहित्य ऐसे तथ्योल्लेख से भरा पड़ा है। अतः यही आधार निर्भ्रान्त है। इससे प्रकट है कि भरत जो शारीरिक बल एवं आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण थे, भारत के सम्राटों की मौक्तिक माला के सुमेरु थे। सम्राट होते हुए भी अपने संतुलित आचरण के कारण वे वैरागी कहलाते थे। वे रागी होते हुए भी वीतरागी थे, अनासक्त थे।

प्रथम चक्रवर्ती[20] भरत के उदात्त चरित्र को लेकर पर्याप्त साहित्य–रचना हुई है। भगवज्जिनसेनाचार्य कृत **महापुराण** से लेकर आधुनिक काल तक भरत के चरित्र पर आधारित अनेक रचनाओं का निर्माण किया गया। भरत विषयक यह साहित्य दो रूपों में है – एक तिरसठशलाका महापुरुषों से सम्बद्ध रचनाओं में और दूसरा उन पर स्वतंत्र कृतियों के रूप में। ऋषभदेव एवं बाहुबली से सम्बन्धित रचनाओं में भी भरत चरित्र वर्णित है। **भरतेश्वराभ्युदय काव्य** (सिद्धयंक – महाकाव्य), **जैन कुमारसंभव,** भरतचरित्र विषयक स्वतंत्र कृतियां हैं।

संस्कृत–हिन्दी शब्दकोशों में 'भरत' शब्द के यद्यपि कई अर्थ दिए गए हैं, किन्तु उनमें प्रसंग–प्राप्त अर्थ ही विचारापेक्ष हैं। संस्कृत के **'हलायुधकोश'** में 'भरत' शब्द का सम्बद्ध अर्थ–विवेचन इस प्रकार दिया है जो मननीय है – 'भरतः पुं0 (विभर्ति स्वांगमिति, विभर्ति लोग निति वा। भृ+ 'भृमदृशियजीति' अत च्) नाट्य शास्त्रकृन्मुनि विशेषः, दौष्यन्तिः (शाकुन्तलेय) आदि अर्थ के बाद लिखा है। – 'ऋषभ देवात् इन्द्र दत्त जयन्त्यां कन्यायां जात शत पुत्रान्तर्गत ज्येष्ठपुत्रः'[21] और यही अर्थ हमें अभिप्रेत है। **'हिन्दी विश्वकोश'** (नागेन्द्र नाथ वसु) में भी लगभग ऐसा ही व्युत्पत्ति–सूत्र दिया गया है, जिसमें (उण् 3 / 110) अधिक है और अर्थ

लिखा है – 'ऋषभदेव के पुत्र', इसके आगे कुछ और विवरण दिया है। साथ ही 'जड़भरत' का उल्लेख कर लिखा है – 'ये लोक संग विवर्जित रहने के अभिप्राय से जड़वत् रहते थे।' जैन मतानुसार आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ भगवान के पुत्र छः खंड के अधिपति चक्रवर्ती थे। संसार से परम विरक्त रहते थे।[22] **'भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश'** (सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव) तथा अन्यान्य हिन्दी–कोशों में 'भरत' का अर्थोल्लेखान्तर्गत – दुष्यन्त–पुत्र, नाटयशास्त्रकर्ता, नट आदि के साथ ही ऋषभ–पुत्र भरत को 'जड़भरत' के रूप में उल्लेखित किया गया है।[23]

वैसे 'भरत' शब्द का जहां तक शाब्दिक अभिप्राय है, तो उसका अर्थ है जो संसार का सुचारू रूप से 'भरण–पोषण' करता है, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी **'रामचरितमानस'** में भरत के नामकरण के सम्बन्ध में लिखा हे – **'विस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।'** (1/197/7)

इसी सन्दर्भ में **श्रीमद्भागवत** का निम्न उद्धरण विशेष महत्वपूर्ण है –

'तस्माद् भवन्तो हृदयेन जाताः
सर्वे महीयांसममुं सनाभम्।
अक्लिष्ट बुद्धया भरतं भजध्वं
शुश्रूषणं तद् भरणं प्रजानाम्।।' (5/5/20)

भगवान ऋषभदेव के कथन के रूप में इसका तात्पर्य यह है कि 'यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रजाओं के भरण–पोषण रूप सेवाकार्य करने के कारण **भरत** नाम से विख्यात होगा'। इसी प्रकार **'मत्स्यपुराण'** में लिखा है –

भरणात् प्रजानाच्चैव मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनैश्चैव वर्ष तद् भारतं स्मृतम्।। (50/5–6)

उक्त कथन से प्रतीत होता है कि इस पुराण में 'मनु' को ही प्रजाओं के भरण–रक्षण के कारण **भरत** संज्ञा से अभिहित होने से यह देश 'भारत' कहलाया। यहां 'भरत' से 'भारत' बना, यह तो प्रकट है, किन्तु ऋषभ–पुत्र–भरत का उल्लेख नहीं है; यहां 'मनु' को 'भरत' कहा गया है, जिससे यह अन्य पुराणोंल्लेख से विपरीत–सा जान पड़ता है, किन्तु ऐसा नहीं है। विचार करने पर ज्ञात होता है कि उक्त कथन भी सापेक्ष है। वस्तुतः इस काल में भारत के शासक को 'मनु' कहते थे और 'भरत' भी 'मनु' थे। इसीलिए 'मनु' एवं 'भरत' दोनों का एक साथ उल्लेख हुआ है। यहां आदिजनक (स्वयंभू) मनु से तात्पर्य नहीं है।[24] जैसा कि **महापुराण** से भी प्रकट है – नाभिराय को अंतिम मनु माना गया है, किन्तु ऋषभदेव

और उनके बाद भरत ने भी वही कार्य प्रतिभा, मनस्विता और सुदृढ़ता से सम्पन्न किया, अतः उन्हें भी 'मनु' कहा गया। जिनसेनाचार्य के **महापुराण** में उल्लेख है – **'सोऽजीजनत्तं वृषभं महात्मा, सोऽप्यग्रसूनुंमनुमादि राजम्।।'** (3/237) अर्थात् उन्होंने (नाभिराय) वृषभ जैसे महात्मा को जन्म दिया और वृषभदेव के ज्येष्ठपुत्र आदिराजा भरत भी 'मनु' हुए। इसी भाव को एक अन्य स्थान पर महापुराणकार ने **'वृषभो भरतेशश्च् तीर्थ चक्रभृतौ मनुः'** (3/232) कहा है। इसका तात्पर्य है कि वृषभदेव (ऋषभ), मनु एवं तीर्थंकर थे और भरत चक्रवर्ती भी 'मनु' संज्ञा से अभिहित होते थे। गुणभद्राचार्य ने **उत्तरपुराण** (7/49) में भरत को सोलहवां मनु लिखा है। भरत को प्रजा के भरण–पोषण का कर्तव्य निर्वाह मन से किये जाने के कारण सोलहवां मनु कहा गया है और इस प्रकार उनकी 'मनु' संज्ञा सार्थक है, अतः इसमें कोई संशय नहीं है।

अपने लोकहित–कार्यो से भरत [25] का यश विश्व में मनु, चक्रवर्तियों में प्रथम, षट्खंड भरत क्षेत्र (भारतवर्ष) के अधिपति, राजराज, अधिराट्ट और सम्राट के रूप में उद्घोषित हो गया था। भरत के उदात्त चरित्र ने लोगों के हृदयों में अलौकिक भावनाओं को जन्म दिया था और उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि अति शक्ति सम्पन्न भरत के चरित्र को सुनने या सुनाने मात्र से कामनाएं स्वतः पूर्ण हो जाती हैं। ऐसी आस्था के परिणामस्वरूप ही आगे चलकर पूज्य भाव से उनकी मूर्तियों का निर्माण किया गया। देश में कई स्थानों पर उनकी अति सुन्दर मूर्तियां मिलती हैं, जिनमें देवगढ़ में स्थित ध्यानमग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्णित उनकी एक प्राचीन प्रतिमा अपनी भव्यता के कारण उल्लेखनीय है।

अन्त में **भागवतपुराण**–कार ने भरत के यश का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है – 'हे राजन्! भगवद् भक्ति से युक्त, निर्मल गुण, कर्मशील राजर्षि भरत का चरित्र कल्याणप्रद, आयु का संवर्धक, धनाभिवर्द्धक, यशः प्रदायी तथा स्वर्ग अपवर्ग का कारणभूत है'; और भी कि 'उन्होंने जिस तरह शासन किया, कोई अन्य नहीं कर सकता। उन उत्तम श्लोक भरत ने दुस्त्यज स्त्री–पुत्र, मित्र और राज्य की लालसाओं को मलवत त्याग दिया।'

वस्तुतः आदिजिन ऋषभपुत्र प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत की शुभ्रा एवं अनश्वरी कीर्ति, जो पृथ्वी और स्वर्ग को व्याप्त करने वाली है, चिरस्थायी है, शाश्वत है, नित्य है।

---

1 इनकी माता के रूप में 'जयन्ती' का नामोल्लेख भी मिलता है। इन्द्र ने 'जयन्ती' को ऋषभदेव को दिया था।

2 **वायुपुराण** (31/37–38) – आग्नीध्रं ज्येष्ठ दायादं कन्या पुत्रं महाबलम्; प्रियव्रतोऽभ्यषिज्यतं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम्। तस्य पुत्रा बभूवुर्हिप्रजापति समौजसः; ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य...।

3 **स्कन्दपुराण** (1/2/37/55) में 'हिमाद्रि जलधेरन्तर्नाभि खण्डमितिस्मृतम्' आया है। **भागवत** (5/7/3) में 'अजनाभं नामैतद् वर्ष भारत मिति यत् आरभ्य व्यपदिशन्ति' लिखा है। **महापुराण** (62/8) भी देखिए।

4 **भागवत्**, 11/2/24

5 **महापुराण**, 14/81

6 इसी चिन्ह से पुरातत्वज्ञ मूर्तियों की पहचान करते हैं और इसी के आधार पर इन्हें सिन्धु घाटी सभ्यता में पूजित माना जाता है।

7 **महाभारत**, शांतिपर्व, 12/64/20 तथा **महापुराण**, 42/6

8 **महापुराण**, 16/264

9 **भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश** (सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव) में 'ऋषभ' शब्द।

10 **वसुदेवहिण्डी**, प्र0खं0, पृ0 86

11' **लिंगपुराण** 47/23 – हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्। तस्मात्तु भारतं वर्षं वस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।।'

वायुपुराण के अनुसार इसके पूर्व इस देश का नाम 'हिमवर्ष' था।

12 **भागवत्** 5/7/1 – पांञजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे।

जैन शास्त्रों के अनुसार भरत की रानी का नाम सुभद्रा के परिणय की कथा पर आधारित **'सुभद्रा नाटिका'** जैसी कुछ साहित्य रचना हुई है।

13 **वायुपुराण** 31/53 में 'भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः', तथा **अग्निपुराण** 10/11 में 'भरताद् भारतं वर्ष भरतात् सुमतिस्त्वभूत्', उल्लेख आया है। सुमति के अतिरिक्त भरत के अन्य कई पुत्रों के नाम भी मिलते हैं।

14 कवि धनपाल रचित **बाहुबली चरिउ**।

बाहुबली के चरित्र को लेकर जैन समाज में अनेक ग्रंथों की रचना की गई है, जो पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। बाहुबली का जीवन–चरित्र, ऋषभदेव एवं भरत के चरित्रों के साथ ही सम्बद्ध है और उनके साथ वर्णित है, पर उनके चरित्र पर स्वतंत्र ग्रंथों का भी निर्माण हुआ है।

15 भरत के पास नौ निधियां थीं। ये सभी चक्रवर्त्तियों को प्राप्त होती हैं। देखिए, मायानंदि रचित **शास्त्रसारसमुच्चय**, पृ0 74

16 आचार्य कुलभद्र कृत **सारसमुच्चय** – 136

17 **जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पीठिका,** भूमिका, पृ0 8

18 **भारतवर्षीय प्राचीन चारित्र कोश** (सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव) में 'भरत' (जड़) शब्द तथा **हिन्दी विश्वकोश** (नागेन्द्र नाथ वसु) **खंड** 15, पृ0 730–31–32

19 अधिकांश कोश ग्रंथों में ऐसा ही उल्लेख हुआ है। इस प्रकार के उल्लेख परम्परा विरोधी होने से अप्रमाणिक हैं। इस विषयक अन्य उल्लेख भी शुद्ध नहीं हैं, अतः अमान्य हैं।

20 'चक्रवर्ती का अर्थ है – जो समुद्र से परिवृत सर्वभूमि का अधिपति हो अर्थात् सार्वभौम शासक।

21 **हलायुधकोश** (हिन्दी समिति, लखनऊ), पृ0 490

22 **विश्व हिन्दी कोश,** खंड–15, पृ0 730–31

23 इस सम्बन्ध में **संस्कृत–हिन्दी कोश** (आप्टे), **वाचस्पत्य कोश, दी संस्कृत इंग्लिश कोश** (मोनियर मोनियर–विलियम्स), **हिन्दी राष्ट्रभाषा कोष** (इंडियन प्रेस, प्रयाग), **वृहत् हिन्दी कोश** (ज्ञानमंडल, काशी), **संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर** (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

24 या फिर **मत्स्यपुराण** की उक्त निरुक्ति बाद की आरोपित है। प्राचीन निरुक्ति के अनुसार भरत ही प्रजा का भरण–पोषण करने के कारण 'भरत' कहलाते थे। **पुराण विमर्श** (पं0 बलदेव उपाध्याय), सप्तम परिच्छेद।

25 मोहनजोदाड़ो की एक सील मूर्ति पर वे अपने पिता (ऋषभ) और अब वीतरागी साधु के समक्ष अंजलिबद्ध नतमस्तक बैठे हैं, ऐसा विचार (अनुमान) किया गया है। यहां भरत ऋषभदेव के अध्यात्म वैभव पर विमुग्ध होकर अपने पार्थिव वैभव को अकिंचन मानते हैं, ऐसा लगता है।

(श्री वेद प्रकाश गर्ग भारतीय संस्कृति के वयोवृद्ध अध्येता विद्वान है। उनका यह लेख **श्रमण** के अक्टूबर–दिसम्बर 2008 (वर्ष 59, अंक 4) में प्रकाशित हुआ था। इसमें हिन्दु पौराणिक अनुश्रुतियों में भरत सम्बन्धी सामग्री का शोधपरक उल्लेख किया गया है। भरत के समग्र ऐतिह्य (ऐतिहासिकता एवं ऐतिहासिक महत्व) का विवेचन हमने **शोधादर्श 31** (मार्च 1997) में किया था। विषय के समग्र विवेचन को दृष्टि में रखते हुए उस लेख को भी इसी लेख के बाद प्रकाशित किया जा रहा है। मोहनजोदाड़ो की जिस सील का उल्लेख ऊपर पाद–टिप्पणी 25 में किया गया है उसका उल्लेख एवं विवेचन भी हमारे लेख में है। – डॉ. शशि कान्त)

श्री गर्ग का पता – 14, खटीकान, मुजफ्फरनगर–251002

✧✧✧

चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य

– डॉ0 शशि कान्त

कर्मभूमि का प्रादुर्भाव होने पर सभ्यता के विकास की अपेक्षा से कुछ काल्पनिक उद्भावनायें की गई जिनमें सर्वप्रमुख है शलाका पुरुषों (Key Persons) की कल्पना। शलाका पुरुष मानवीय सभ्यता के विकास क्रम में शलाका या कुन्जी (Key) का काम करते हैं। आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष के प्रतीक रूप में तीर्थंकर की कल्पना की गई, तो लौकिक वैभव के प्रकर्ष के प्रतीक रूप में चक्रवर्ती सम्राट की कल्पना की गई। 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रति नारायण की कल्पना मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों और सद्–असद् प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में की गई। शान्ति, कुन्थ और अरह चक्रवर्ती और तीर्थंकर दोनों सूचियों में हैं, अतः शलाका पुरुषों की वास्तविक संख्या 63 न होकर इस काल खण्ड में मात्र 60 ही होती है। सभी 24 तीर्थंकर और 9 बलभद्र इसी भव से कर्मक्षय करके संसार–चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उक्त तीर्थंकर चक्रवर्तियों के अलावा 9 चक्रवर्तियों में से 5 मुक्तिलाभ करते हैं 2 स्वर्ग प्रयाण करते हैं और 2 नरकगामी हैं। प्रतिनारायण असद् प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और नारायण उनका दमन करके सद्प्रवृत्तियों की श्रेष्ठता विख्यापित करते हैं, परन्तु दोनों ही यद्यपि भावी तीर्थंकर होंगे, सम्प्रति नरकगामी हैं और पुनः जन्म धारण करने पर अपने गन्तव्य को पहुंच सकेंगे।

मानवीय सभ्यता के विकास में संघर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रयत्न करने, कार्य करने और साभिप्राय ऐसा कार्य करने जो सफलता प्राप्त कराये, की प्रेरणा संघर्ष प्रदायी है। अपने चारों ओर के पर्यावरण में जो भी प्रकृति की देन है, उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए संघर्ष सभ्यता की पहली सीढ़ी है। प्रकृति से संघर्ष करने के लिए मनुष्य को एक संगठन की आवश्यकता अनुभूत हुई, संगठन को चलाने के लिये एक व्यवस्था आवश्यक प्रतीत हुई, और उस व्यवस्था का नियमन करने के लिए एक सत्ता की अनिवार्यता की प्रतीति हुई। सत्ता का आधार पहले व्यक्ति ज्येष्ठता बना और व्यक्ति श्रेष्ठता में उसकी परिणति हुई। सारी सत्ता एक ही व्यक्ति में सिमट कर रह गई, और उस व्यक्ति को प्रमुख, राजा, एकराट् या सम्राट के नाम से अभिहित किया गया। जो सत्ता से वंचित रहा, यदि उसमें सामर्थ्य हुई तो उसने सत्ताधारी के विरुद्ध विद्रोह किया और जब विद्रोह व्यापक हो गया तो उसने क्रान्ति का रूप ले लिया। जब क्रान्ति के प्रस्तोता स्वयं सत्ता में आ गये तो उन्होंने फिर स्वयं एकतन्त्र की ओर प्रयाण किया।

पिछले सौ वर्षों का विश्व का इतिहास उक्त परिदृश्य का साक्षी है। राजनैतिक दलों में आला कमान (High Command) के रूप में हम इस एकतन्त्रात्मक प्रवृत्ति को देख सकते हैं। जो भी सर्वोच्च नेता, अधिपति या

सम्राट होगा वह समस्त आर्थिक संसाधनों और प्राकृतिक सम्पदा को अपने आधिपत्य में लाना चाहेगा और इस प्रयत्न में लगा रहेगा कि उसके नीचे से कुर्सी खिसक न जाये वरन् उसके वंशजों की ही बपौती बनकर रह जाये। इसी कारण ज्येठ पुत्र के उत्तराधिकार (Primogeniture) की व्यवस्था की गई, निर्वाचन में रिगिंग (Rigging) और गुटबन्दी का बेझिझक प्रयोग किया जाने लगा, और दूसरों को आर्थिक संत्रास देने के विभिन्न उपाय सोचे जाने लगे ताकि वे हमारी अधीनता स्वीकार कर लें। यही लौकिक वैभव का प्रकर्ष, सार रूप में चक्रवर्तित्व, अपनी समुन्नत अवस्था में है।

पुरावशेषों के आधार से विश्व में मानव सभ्यता के विकास का इतिहास प्रायः दस हजार वर्ष का अनुमान किया जाता है। सभ्यता के ज्ञात केन्द्र उत्तरी अफ्रीका में नील नदी की घाटी, पश्चिम एशिया में दज़ला और फरात नदियों की घाटी, पूर्व एशिया में यांग–सि–क्यांग और ह्वांग–हो नदियों की घाटी, और दक्षिण एशिया के भारत प्रायद्वीप में सिन्धु नदी, गंगा नदी और गोदावरी नदी की उपत्यकांयें रही हैं। सिन्धु नदी की उपत्यका से मोहनजोदड़ो नामक स्थान पर खुदाई से लगभग 6000 वर्ष प्राचीन मिट्टी की मुद्रायें मिली हैं। एक मुद्रा पर एक पुरुष एक अन्य पुरुष की वन्दना कर रहा है। वन्दना करते पुरुष के पीछे एक सुसज्जित बैल है जो उसका वाहन प्रतीत होता है, और यह उसके राजत्व को भी सूचित करता है। नीचे सात मानव आकृतियां हैं जो सभी वस्त्र धारण किये हुए हैं और नारी रूप प्रतीत होती हैं। एक के सिर पर मुकुट–सा भी है जो उसके अग्रमहिषी होने का सूचक हो सकता है। शेष के शिरस्त्राण कुछ–कुछ वैभिन्य लिये हैं जो कदाचित् उनके वरिष्ठता–कम या प्रास्थिति को सूचित करते हैं। इस चित्र का रेखांकन नीचे दिया जा रहा है।

यह चित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि भारतीय प्रायद्वीप में राजकीय वैभव का यह अधुनाज्ञात प्राचीनतम अंकन है। मुद्रा पर लेख भी है परन्तु वह अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। उस काल की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित राज–सत्ता के चित्रांकनों से यह चित्र अद्भुत साम्य रखता है। नील घाटी के फ़रा हो, तथा दज़ला–फरात की घाटी में बेबिलोनिया के सुलैमान (Solomon) जिसका उल्लेख **तौरात, इंजील** (Bible) और **कुर्आन–शरीफ़** में आता है, इसके उदाहरण हैं। इससे यह सूचित होता है कि मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही –

1 आध्यात्मिक उत्कर्ष को लौकिक वैभव की अपेक्षा वन्दनीय माना जाता था;

2 राज्य सत्ता का प्रतीक एक सुसज्जित वाहन होता था जो राजपुरुष के साथ रहता था; और

3 राज्यश्री का एक लक्षण परिचर्या हेतु स्त्रियों का बाहुल्य था।

जैनेतर भारतीय पौराणिक गाथाओं में स्वायम्भव मनु को मानव सभ्यता का आदि प्रस्तोता माना गया है। इनके पुत्र प्रियव्रत और पौत्र नाभि थे। नाभि ने इस भूखण्ड को **अजनाभ** संज्ञा प्रदान की। नाभि की पत्नी मरुदेवी से वृषभ या ऋषभ हुए और ऋषभ के एक–सौ पुत्रों में भरत ज्येष्ठ थे जिन्हें ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते पिता का राज सिंहासन प्राप्त हुआ। भरत अपने पितामह नाभि से भी अधिक प्रतापी थे और अब उनके नाम से यह भूखण्ड **भारतवर्ष** कहलाने लगा।

'भरत' का अर्थ होता है 'भरण और रक्षण करने वाला'। यह सूचित करता है कि भरत ने एक व्यवस्था का नियमन किया जिसने तत्कालीन मानव जाति को एक व्यवस्थित संगठन प्रदान किया ताकि प्रकृति को मानव अपने अनुकूल बना सके और अन्य प्राणि समुदायों से अपनी रक्षा कर सके। व्यक्ति के रूप में भरत की ऐतिहासिकता सुनिश्चित करना सम्भव नहीं है, परन्तु सत्ता की सर्वोच्चता और लौकिक वैभव के प्रकर्ष की एक अवधारणा के रूप में इसे एक ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है।

जो भी पौराणिक गाथायें हैं, चाहे वे जैन पुराणकारों द्वारा रची गई हों अथवा ब्राह्मणीय पुराणकारों द्वारा प्रस्तुत की गई हों, वे गत दो हजार वर्ष से प्राचीनतर नहीं हैं। ब्राह्मणीय पुराणों की रचना 4थी–5वीं शती ईस्वी में सामान्यतः मानी जाती है और इनके बीज रूप **रामायण** और **महाभारत** का रचनाकाल, शोधक विद्वानों द्वारा, ईसा पूर्व 2री–1ली शती

अनुमान किया जाता है। जैन परम्परा में विमलसूरि का **पउमचरियं** अधुनाज्ञात सर्वप्राचीन चरित्र या पुराण काव्य है और यह ईसापूर्व प्रथम–ईस्वी प्रथम शती की रचना है। प्रथम जैन महापुराण कवि परमेश्वर का **वागार्थ संग्रह** है जिसका समय लगभग 400 ईस्वी अनुमानित है। जिनसेन सूरि पुन्नाट के **हरिवंशपुराण** की रचना 783 ई० में, स्वामी जिनसेन के **आदिपुराण** की रचना 837 ई० में और हेमचन्द्र सूरि के **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** की रचना 12वीं शताब्दी ईस्वी में हुई। भरत को लेकर जो विविध कथानक और कथायें प्रकाश में आये हैं वे दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओं में बाद के हैं।

इन पौराणिक कथानकों को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में लिया जाना समीचीन नहीं है। इन कथानकों के आधार से उत्खनन आदि से प्राप्त पुरावशेषों को परिभाषित किया जाना भ्रमोत्पादक है और ऐतिहासिक दृष्टि से इतिहास को काल्पनिक या मिथक बनाने का दुराग्रह मात्र है। कल्पित कथा (Fiction) मनोरंजन कर सकती है, किसी विषय को दृश्यांकित करने का माध्यम हो सकती है, और कभी–कभी किसी ऐतिहासिक घटना, व्यक्ति या स्थान को समाहित भी कर सकती है, परन्तु वह ऐतिहासिक दस्तावेज (Document) नहीं होती और ना ही ऐतिहासिक कथ्य का निरूपण करती है। अतः इन कथाओं के आधार से चक्रवर्ती भरत के इतिहास को निबद्ध करना और उसे एक ऐतिहासिक प्रलेख के रूप में प्रस्तुत करना, धार्मिक या साम्प्रदायिक हठधर्मिता या कदाग्रह का उदाहरण मात्र तो हो सकता है परन्तु इतिहास नहीं।

जैन एवं जैनेतर पौराणिक एवं अन्य कथा साहित्य में भरत के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रतिभासित होते हैं –

1 मानव सभ्यता के आदि युग में एक ऐसा पुरुष हुआ जिसने मानवीय संगठन को व्यवस्थित कर सत्ता का एक स्वरूप प्रतिष्ठापित किया।

2 अपने जाति या समुदाय का भरण और रक्षण करने की अपेक्षा से उसे 'भरत' संज्ञा दी गई।

3 सत्ता के सर्वोच्च प्रकर्ष के रूप में चक्रवर्ती की सार्वभौम सत्ता की कल्पना की गई।

4 सत्ता अविभाज्य रहे इसलिये ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार के सिद्धान्त की प्रस्तावना की गई।

5 सभी प्रकार की निधियां चक्रवर्ती के अधीन करके उसका आर्थिक संसाधनों पर सम्पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार किया गया।

6 स्त्री को सम्पत्ति, भोग्या और ऐश्वर्य का प्रतीक माना गया, और इसकी पुष्टि स्वरूप 96,000 रानियों की कल्पना की गई।

7 जिस समयावधि में इन पुराण कथाओं की रचना हुई, उस समय के भौगोलिक ज्ञान के अनुसार रचनाकारों ने छह खण्ड पृथ्वी को भारतीय प्रायद्वीप में ही परिसीमित कर दिया। आज का कथाकार इस छह खण्ड को वर्तमान में अभिज्ञात सात महाद्वीपों से समीकृत करना चाहेगा।

8 सत्ताधारी के लिये अपने अधिकार का उपभोग अनासक्त भाव से करना अभीष्ट है ताकि जनता में व्यवस्था की निष्पक्षता और नियम–निष्ठा के प्रति विश्वास बना रहे।

9 सत्ता निष्कण्टक होनी चाहिए, अतः सत्ता के प्रति दावेदारों (contenders) को पराभूत किया जाना अपेक्षित है और इसके लिए कि वे रास्ते से हट जायें तथा आगे भी संकट न पैदा करें, सभी उपाय क्षम्य एवं अनुमन्य हैं।

उपरोक्त विवेचन चक्रवर्ती भरत के व्यक्तित्व को एक वैचारिक ऐतिहासिकता प्रदान करता प्रतीत होता है। यह वैचारिक अवधारणा किसी भौगोलिक सीमा से आबद्ध नहीं थी वरन् यह विश्वव्यापी थी और विभिन्न भूभागों में वहां के स्थानिक परिवेश के सापेक्ष उसकी व्याप्ति हुई।

पुनश्च :

अब तक प्राप्त अभिलेखों में मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेख प्राप्त हैं। उसके एक शिलालेख में इस देश के लिए 'जम्बूद्वीप' नाम आया है। अशोक का समय 4थी शताब्दी ईस्वीपूर्व है।

खारवेल के शिलालेख में पहली बार 'भरधवस' अर्थात् 'भारतवर्ष' नाम का उल्लेख हुआ है। खारवेल का समय 185 से 172 ईसा पूर्व था। इससे यह इंगित होता है कि भारतवर्ष नाम की प्रतिष्ठा 2री शताब्दी ईसापूर्व में हो गई थी। यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि वर्तमान में हमारे देश का नाम 'भारतवर्ष' खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख के उक्त उल्लेख पर आधारित है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं यह उल्लेख किया है।

✧ ✧ ✧

शिखर जी व गिरनार जी की तीर्थ यात्रा के पुराने प्रमाण

— श्री निर्मल कुमार पाटोदी

साधारणतया हम जिस स्थान की यात्रा करने के लिये जाते हैं, उस स्थान को तीर्थ कहते हैं। तीर्थ भवसागर से पार उतरने का मार्ग बताने वाला स्थान है। जिस स्थल से तीर्थंकर भगवान को निर्वाण प्राप्त हुआ है, वह सिद्धक्षेत्र है। ऐसे स्थानों को सौधर्मेन्द्र ने अपने वज्र–दण्ड से चिन्हित कर दिया था। उस स्थान पर श्रद्धालु चरण–चिन्ह बनवा देते थे। उन स्थानों पर प्राचीनकाल से अब तक चरण–चिन्ह बने हुए हैं और आराधक/भक्त इन्हीं चरण–चिन्हों की पूजा–अर्चना करते रहे हैं।

तीर्थों में उच्च–शिखर–युक्त आस्था का परम पावन अनादि निधन तीर्थाधिराज श्री सम्मेदशिखरजी पार्श्वनाथ पर्वत दिगम्बर जैन धर्म का हमेशा से सिद्धभूमि शाश्वत धर्मतीर्थ है। वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान आदिनाथ ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर को छोड़ कर शेष बीस तीर्थंकर तथा करोड़ों वीतरागी भव्य आत्माओं ने इस पर्वतराज के विभिन्न शिखरों से निर्वाण पद पाया है। भगवान महावीर के गणधर गौतम स्वामी को भी इसी सिद्धक्षेत्र से मोक्ष पद मिला है। इन सभी के दिगम्बर आम्नाय के चरण–चिन्ह श्री सम्मेद–शिखरजी पहाड़ पर विराजमान हैं।

दिगम्बर जैनों में तीर्थयात्रा के लिये चतुर्विध संघ निकालने की परम्परा बहुत पुरानी है। सैकड़ों वर्ष पूर्व जब आवागमन के साधन और सुविधाएं बहुत कम थी, तब भी अपना इहलौकिक व पारलौकिक जीवन मंगलमय बनाने और कर्मों की निर्जरा के लिए हजारों हजार दिगम्बर जैन श्रद्धालु और यात्री–संघ इस महापवित्र सम्मेदशिखर तीर्थराज तथा श्री गिरनार जी पर्वत आदि की वन्दना करते रहे हैं।

श्री सम्मेदशिखर जी

शिखर जी तीर्थक्षेत्र 38 वर्ग किलोमीटर अर्थात् 16000 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। भूतल से इसका वन्दना पथ 9 किलोमीटर की चढ़ाई, 9 किलोमीटर समतल चरण–चिन्ह शिखर क्षेत्र और 9 किलोमीटर उतार का है। समुद्र तल से इसकी उचाई 5200 फीट है। परिक्रमा 30 किलोमीटर लम्बी है।

वीतराग ऊर्जा की अवर्णनीय पावन धरा तीर्थों में पहला तीर्थ श्री सम्मेदशिखर जी की संवत 1384 में आत्म कल्याण के लिये चाटसू

(राजस्थान) से संघपति तीको एवम् उसके परिवार ने वन्दना की थी।

भट्टारक प्रभाचन्द्र का पट्टाभिषेक आत्मशोधन की इस पावन धरा पर संवत् 1571 फागुन सुदी 2 के शुभ दिन हुआ था।

संवत 1632 में सम्मेदशिखर जी पर प्रतिष्ठा कराई गई थी। उस समय सुरेन्द्र कीर्ति भट्टारक की गादी पर विराजमान थे।

संवत् 1658 में आमेर के महाराजा मानसिंह के प्रधान अमात्य साह नानू गोधा ने शिखर जी में दिगम्बर जैन मंदिर बनवाये तथा तीर्थंकरों के चरण स्थापित किये और कई बार वन्दना की।

संवत 1719 फागुन सूदी 9 को साह नरहरिदास सुखानन्द ने पहाड़ पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवायी।

भादवा (राजस्थान) के सुखराम रावका कवि संवत 1830 को रवाना होकर संवत 1831 के श्रावण मास के कृष्णपक्ष में यात्रा करके शिखर जी से वापस लौटे थे।

संवत 1863 की माघ बदी सप्तमी को जयपुर के दीवान रामचन्द्र छाबड़ा ने अपने विशाल संघ के साथ सम्मेदशिखर जी की प्रथम बार वन्दना की थी और वहां विकास के कार्य करवाये थे। इनके यात्रा संघ में पांच हजार स्त्री–पुरुष थे।

विक्रम संवत 1867, कार्तिक कृष्ण पंचमी, बुधवार, को मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) से दिगम्बर जैन धनाढ्य साहू धनसिंह की अगुवाई में एक यात्रा संघ गया था। इस यात्रा संघ में 252 बैलगाड़ियां और 1222 यात्रीगण थे। यात्रा का वृतान्त "सम्मेदशिखर की यात्रा का समाचार" नामक हस्तलिखित पुस्तिका में है। यात्रा संघ माघ बदी 3 को पालगंज पहुंचा था। माघ बदी 5 को संघ मधुबन में ठहरा था। बसंत पंचमी को संघ ने श्री सम्मेदशिखर पर्वत की वन्दना की थी। माघ सुदी 15 को मधुबन से वापसी के लिये संघ ने प्रस्थान किया था। बैसाख बदी 12–13 को यात्री संघ वापस मैनपुरी पहुंचा।

उर्ज्जयन्त तीर्थ गिरनार जी

संवत 503 में महणसी बाकलीवाल के पुत्र कोहणसी ने 24 प्रतिष्ठाएं करवायी थी। बाद में इन्हीं कोहणसी के पुत्र बीजल पुत्र गोसल ने संवत 625 में आचार्य भानचंद जी के सान्निध्य में गिरनार तक संघ चलाया।

संवत 1245 माघ सुदी को भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय में हेमू के पौत्र बैरा ने गिरनार तक यात्रा संघ चलवाया।

संवत 1709 में नेवटा निवासी तेजसी उदयकरण ने सम्यग्ज्ञान—शक्ति यंत्र की प्रतिष्ठा गिरनार जी में करवा कर जयपुर के पाटोदियान मंदिर में उसे विराजमान किया था।

रचना 'जात्रासार' में गिरनार जी एवं तारंगा क्षेत्र की, संवत 1829 के पूर्व की, यात्राओं का वर्णन है।

संवत 1858 बैशाख सुदी 10 को जयपुर के रामचन्द्र छाबड़ा ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी और रैवतकाचल (गिरनार) की पूरे संघ के साथ यात्रा की।

चिन्तनीय

भारत में दिगम्बर जैन समाज की पांच राष्ट्रीय संस्थाएं हैं :— दिगम्बर जैन महा समिति, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद, दक्षिण भारत जैन सभा, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, और भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी। इनमें से तीर्थक्षेत्र कमेटी मुम्बई, की ओर से मोक्ष सप्तमी 2012 से 2013 तक श्री सम्मेदशिखर वर्ष मनाने की घोषणा की गयी थी। श्रेयस्कर यह होता कि घोषणा पांचों राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा बनी समन्वय समिति की ओर से होती। शिखर जी पूरे दिगम्बर जैन समाज का है। संदेश पूरे समाज की राष्ट्रीय संस्थाओं की ओर से जाना था, जिसमें शिखर जी को लेकर सर्वोच्च न्यायालय में जो प्रकरण विचाराधीन है, उसकी जानकारी दी जाती, शिखर जी तीर्थ की रक्षा से जुड़ी आवश्यक जानकारियां समाज को व संतगणों को पहुंचाई जाती। सिर्फ पर्यावरण स्वच्छता, शुद्धता ही वहां की समस्याएं नहीं हैं।

'विद्या निलय', 45 · शान्ति निकेतन, (बाम्बे हास्पिटल के पीछे), इन्दौर—452010

✧✧✧

Mahāvīra's contribution to the mankind for all the ages

- Dr. Samani Ṡhashi Prajñā

Karma as an architect of soul : Inculcation of self-reliance

Mahāvīra was the great enlightened Teacher who proclaimed that man is the creator of himself, there is no creator-God. Man's *karma* is responsible for his ever continuous rebirths. Similarly, he proclaimed that man has to earn his own salvation, there is no saviour, no God, no Almighty Power who can save and rescue him from the mire of repeated existences. He declared that man himself is the creator of himself and solely responsible for his own happiness and misery. If he can purify his own three level actions - bodily, vocal and mental, he is bound to overcome sufferings and realize the perfect bliss of emancipation.

According to the Jain philosophy, the definition of God is: God is that soul which attains its own pure nature (knowledge and intuition) after completely removing all the *karma*. The defining characteristic of Godhood is identical with that of liberation itself. To attain liberation is to attain Godhood. The meaning of the term *Īśvara* is powerful. So, the term *Īśvara* can very well apply to the soul that has become powerful by attaining its perfectly pure nature constituted of four characteristics, *viz.*, infinite knowledge, infinite vision, infinite power and infinite bliss. We must recognize that every living being is essentially pure and has the capacity for fully developing its own nature. In other words, every creature is God in potentiality and that becomes actual when developed to perfection. This potential God in each living being appears in its true light, *i.e.,* as a full-fledged God with his four-fold infinites. To attain this state is to attain Godhood.

The Jains deny the existence of an imperishable almighty who creates the universe, rules it and when he likes, destroys it. The acceptance of a creator and destroyer appears to them to be unjustified and self-contradictory, and has to be rejected both from the point of view of logic and morality. The Jains refute the concept of God as giver of the fruition of *karma*. If one accepts this, then

the question of partial behavior of God among the beings, arises. If one says, God created this universe purposefully because of compassion, this logic is also not reasonable as we see cruelty in this world. If one says, God was alone, he wanted to be many, so the creation came into being, and this also seems illogical.

The Jain philosophers like Mahāprajña have deeply studied these issues and given reasonable solution through the theory of *karma*, which confirms the independent existence of each and every soul. Freedom of will is the first basis of *karma*. Secondly, the moral responsibility of each and every action is on the individual itself. Thirdly, every individual has a right to progress and change his destiny. Ācārya Mahāprajña rightly says that the theory of *karma* is the theory of *puruṣārtha* or effort. One can't differentiate the two as they are twins, found always together.

The concept of *saṁkramaṇa* (change) proves that every individual through one's auspicious actions can change one's previous bound inauspicious *karma*. If the concept of *saṁkramaṇa* was not prevailing in the *karma* theory, then all ethical practices like recitation of canons, performance of penance, observation of vows, and practice of meditation, will prove to be useless. We find various living illustrations in canonical texts where the soul through one's effort changed one's destiny. So, acceptance of *puruṣārtha* and *karma* theory is equal to the non-acceptance of God or theism.

Jainism against animal sacrifices

Jainism advocates the equality of all the six levels of souls and the welfare of all the living beings. The Jain seers believed in the concept of spiritual advancement for animals, too. The *Aupapātika Sūtra* and other texts indicate that instinctive animals possessing five senses such as elephants, frogs, snakes and lions can behave like human lay Jains, as they have :

a discriminating capacity for good and evil,
a capacity to remember their past lives,
a capacity to acquire clairvoyant knowledge,
the instinct for the desirable and avoidance of the undesirable,

the capacity to perform fasting, penance and self-control and change their behavior, and

the capacity to hear religious scriptural sermons, etc.

The Jain scriptures contain stories of an elephant Meghaprabha, a cobra Caṇḍakauśika and a frog Dadura who worshipped, and a lion who listened to the sermons in an earlier birth of Mahāvīra.

It is clearly written in the *Ācārāṅ Sūtra* that animals, too, possess equal consciousness as per Jain perspective from the existential point of view like human beings. An outstanding aphorism of the *Ācārāṅga* depicts the oneness of the soul, *i.e.,* "whom you want to kill is no one else rather than yourself, that which you want to satisfy is yourself, that which you want to torture is yourself." Such a oneness of souls in all the levels of beings if recognized then violation of basic rights of all the beings can be safeguarded. The Jaina motto of *'Parasparopagraho Jīvānām* as quoted in the *Tattvārtha Sūtra,* highlights that all living organism, however big or small, irrespective of the degree of their sensory perception, are bound together by mutual support and interdependence.

We should extend kindness (*mitti me savva bhūyesu*) to all the living beings. In this conception of universal amity, lies the spirit of universal brotherhood. *Maitrī* means a disposition not to cause any suffering to any living being from mind, body and speech for the practical realization of the ideal of *ahiṁsā.* Mahāvīra's teaching of non-violence towards all beings is very much relevant in the contemporary world.

Equal position to women : Open outlook of Mahāvīra

Mahāvīra's attitude towards womenfolk was also very liberal. He saw the innate good of both men and women, and assigned to them their due place in his Śāsana (Religious Order). In his Religious Order, sex was no barrier to attainng saint-hood. He said that both man and woman are eligible to attain emancipation after destroyng the passions and *karma.* In the Jain tradition there are many virtuous women, namely, *solaha satiya,* who are famous for their purity and chasity. The women had similar duties as men in performing religious rites and rituals, and they

were allowed to read and study the scriptures whereas in Vedic culture and religious society, women and Śūdra were considered inferior, and were debarred from the initiation rites and wearing the sacred thread, a symbol of higher caste, and were not allowed to listen to sacred scriptures . Tīrthaṅkara Mahāvīra gave full freedom to one and all, including women and the Śūdra, to observe common religious practices.

Mahāvīra liberally initiated the nuns in his Order, who were double in number when compared with the monks. In his Order, there were only 14,000 monks but there were 36,000 nuns. In the same way, the number of laywomen was 3,18,000, which was more than the number of 1,59,000 laymen. He propounded that the difference, which we see in the world, is due to the past *karma* and each soul whether male or female through ones pious efforts can change one's destiny.

Attachment - violence versus non-attachment - non-violence

Mahāvīra laid emphasis on the inner happiness of man. Material gains and prosperity of any possible length, however high, lofty and immense that might be, cannot bring to a man his true inner happiness. They bring only temporary happiness to be immediately followed by more sufferings of any kind, *viz.,* sufferings from disease, old age, death, separation from near and dear ones (*priya-viyoga*), union with undesirable ones (*apriya-saṁyoga*), non-attainment and non-fulfilment of desires, lamentation, grief, dissatisfaction, despair, and what not. As a son of the King Siddhārtha, Mahāvīra was blessed with worldly possessions in plenty. But still he was not happy within, and, therefore, one day, he went from home to homelessness in search of real happiness. After his enlightenment he exhorted the people - " Exert yourself for your own happiness, exert yourself for your own salvation. No almighty power can save you and bring you perfect happiness, which you long for. You have to tread on and proceed step by step for reaching your own goal." He further advised his disciples not to accept his word as gospel truth out of regard for him, but to do so only after a thorough investigation of

them, just as man accepts gold after cutting, burning and rubbing it, on a kind of touch stone.

Mahāvīra was not opposed to meeting the primary needs of the rapidly growing population, but his opposition was to the ideology of unrestrained ambitions. Humanity has not yet succeeded in finding a way of life that could satisfy the primary needs of all and simultaneously mitigate the inhuman cruelty, a by-product of excessive acquisition of wealth. So Mahāprajña rightly said - "Solve the problem of possessiveness, the problem of violence will then automatically find its own solution. The effect cannot be got rid of so long as the cause is in function. Violence is an effect, possessiveness is its cause. The root cause of the problem of violence is of tying up the sense of mineness with things".

The philosophy of *Ācārāṅga* gave a new turn to the science of ethics and advanced thought in the direction of peace, announcing - 'Be a seer. Look at every event and bring about a change in your attitude to sensual objects. Do not enjoy objects like the person who doesn't seek truth. But bring about a complete change in your life style through attitudinal change.' If this view of Mahāvīra is translated into reality, unnecessary violence, reactive violence, and physical, mental, emotional and intellectual violence at large, can be avoided.

Establishment of social equality

The Jains and the Buddhists belong to the Śramaṇika stream of Indian religious thought, historically; they have opposed the rigid birth-based caste system of the Vedic religion. Among the people who followed the Vedic culture, society was divided into four classes, (varṇa), namely,brahmin. kṣatriya, vaiśya and śūdra. These were claimed to have emerged from the body of Brahman, the primeval puruṣa : the Brahmin from his mouth, the Kṣatriya from his arms, the Vaiśya from his thighs and the Śūdra from his feet. Moreover, the **Manusmṛiti** depicts that the Brahmins considered themselves superior to the other classes as they performed the complex rituals and behaved as inter-mediaries of the Gods, etc. Thus the society at that time was completely class-

ridden in the sense that unusual importance was given to the Brahmin class to the detriment of other classes and that nobody was allowed to change his class, which he had got on the basis of his birth in that class.

The Jain Tīrthaṅkara opposed social divisions based on birth and reiterated that birth in the society is due to one's earlier *karma.* The social divisions should be based on work to facilitate the smooth functioning of the society, that's why they preached that man becomes brahmin, kṣatriya. vaiśya and śūdra, through one's respective actions and not by birth. Different work cultures will produce different ways of life, and everyone has a potentiality to move into higher or lower social group. All have a capacity for higher spiritual development and since the time of Mahāvīra, people of differing varṇas and jāti from many areas, have accepted the Jain religion, making the Jain society heterogenous.

2600 years ago Mahāvīra propunded the concept of *ayatule payesu, i.e.,* perceive equal consciousnes in all the living beings. The application of this principle of equality in life is very essential to give a full stop to the various levels of exploitation occurring due to the narrow mind set-up. Dividing the human race in the name of sex, caste, creed, colour, language, profession, gender and religion, was rejected by Mahāvīra at the very outset. He laid great stress on the equality of all human beings. Stressing on action and not on birth as a determining factor of superiority, was a radical step. He boldly condemned the caste system based on birth alone for the defects that had crept in it at that time. According to him, each soul has equal potentiality to become *parmātmā,* whether they are men or women, animal being or plant being, white or black, rich or poor, high or low.

The doctrine of *karma* as preached by Mahāvīra was an epoch making revolution. By this doctrine, he first attempted to abolish slavery and vehemently protested against the degrading caste system, which was firmly rooted in the soil of India. He took a bold step against that system which was utter humiliation to humanity. He did not hesitate to preach boldly that it is not by mere birth that one becomes an outcaste or noble, but by one's own actions. Irrespective of caste or creed, rich or poor, all were

really brothers as admitted to his Holy Order and allowed to enjoy equal privileges.

We find in his Holy Order, all classes of people, even fishermen, scavengers, barbers, potters, courtesans, along with the Brahmins and warriors. Harikeshbala was cāṇḍāla (outcaste), Mahāvīra embraced him and initiated him in his Order. Mahāvīra laid a vision of casteless society on the basis of concept of *ekka manussa jaai*, *i.e.*, human race is one . When one ponders upon this issue deeply, one can recognize that this concept can solve many problems occurring today like violence based on regional differences in Maharashtra, language differences in Sri Lanka, colour differences in the West, religious differences in Iran and Iraq, so on and so forth.

Concluding

It can thus be concluded that *Tīrthaṅkara* Mahāvīra by negating the sovereignty of God, in rendering the fruition of one's actions and by preaching the theory of *karma*, self-reliance on one's actions on the basis of *kārmika* mechanism, gave equal freedom to the five-sensed animals and to women to attain emancipation and observe vows. He gave the good formula of attaining peace through the change of possessive attitude. He made an epoch making revolution in the field of casteism by accepting the human race as one. He did not hesitate to preach boldly that it is not by mere birth that one becomes an outcaste or noble, but it is by one's own actions, and, established social equality.

The authoress is Associate Professor in the department of Jainology, Comparative Philosphy and religion, in the Jain Vishva Bharati University, Ladnun-341306 (Raj.)

✧✧✧

अहिंसात्मक अर्थशास्त्र एवं सम्पोषित आजीविका

– डॉ. लोकेश जैन व डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन

सम्पोषित आजीविका एवं अहिंसात्मक अर्थशास्त्र के मध्य सीधा सम्बन्ध है अर्थात् अहिंसक व निर्भयतापूर्ण समाज की स्थापना के लिए ऐसी आजीविका का होना जरूरी है जिसमें नीतिमत्ता का घटक हो और उसे एक ऐसे साधन के रूप में चिन्हित किया जा सके जो जीवन निर्वाह का आधार बन सके। एक असरकारक पोषणक्षम व सफल आजीविका का प्रतिफल "महत्तम लाभ" न होकर "जीवन" होना चाहिए जिसमें व्यक्ति, समष्टि व सृष्टि के सह–अस्तित्व का मानवीय मूल्यों के साथ जतन किया जाता हो। इसलिए आजीविका में उन तत्वों की उपस्थिति अपरिहार्य है जिनसे आपके पोषण के साथ–साथ सामूहिक हितों का भी रक्षण होता हो। जीवन का अर्थ है खुशी अर्थात् सच्चा सुख, और यह तभी प्राप्त हो सकता है जब आपके आसपास के वातावरण में सुख–शांति हो – सभी की आजीविका की सुनिश्चितता हो। इसी विभावना पर ही करुणामूलक अहिंसात्मक अर्थतंत्र की नींव रखी जा सकती है।

एक नीतिमत्तापूर्ण अर्थतंत्र का दारोमदार सम्पोषित आजीविका के स्वरूप, प्रक्रिया और परिमाण निर्धारण पर टिका होता है। विगत ढाई दशक से हमारी वर्तमान आधुनिक अर्थतंत्रीय व्यवस्था वैश्वीकरण, उदारीकरण व निजीकरण के दौर से गुजर रही है जिसमें अधिकतम उत्पादन व अधिकतम लाभ की विभावना प्रधान बनती जा रही है और उसी में लोग सभी मानवीय मूल्यों को ताक में रखकर केकड़ावृत्ति की तरह येन–केन–प्रकारेण एक–दूसरे से आगे निकल जाने की अंधी व विवेकहीन होड़ में अनथक बढ़ने की तथाकथित सफल–असफल कोशिश कर रहे हैं बिना इसकी परवाह किए कि भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों की उपलब्धता की स्थिति पर क्या असर पड़ेगा। जो आजीविका जीवन की वास्तविक जरूरतों को पूरा नही कर सकती अथवा जिसके कारण जीवन के सच्चे सुख व वास्तविक ध्येयसिद्धि से अलग–थलग हो जाना पड़ता हो, ऐसे आजीविका–प्रवाह पर निश्चित रूप से पुनः विचार करने की आवश्यकता है। यह कृत्य भौतिकतावादी बेलगाम आजीविका की चकाचौंध में मृगमरीचिका की भांति "जीवन" की तलाश करने जैसा है जिसमें अंततः निराशा के अतिरिक्त हाथ कुछ नहीं आता।

जैन दर्शन की संयमित जीवनशैली के पैमाने पर यदि उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के बारे में सोचें तो हम पाते हैं कि गुलामी की जड़ है आवश्यकताओं के परिमाण का बढ़ना जो भौतिकवाद, उपभोक्तावाद और आधुनिकीकरण का पर्याय बन चुका है। यदि आवश्यकता के परिमाण पर हमारा अंकुश नहीं होगा तो हम–सुख शांति और आजादी का जीवन नहीं जी सकते। इस व्यवस्था में आवश्यकताओं को विलासिता के स्वरूप में प्रेरित करने वाले उद्‌यम पहले हमें उनका अभ्यस्त बनाते हैं और फिर लगाम अपने हाथ में लेकर हमारी जीवनशैली को मदारी के बंदर की भांति नचाते फिरते हैं। ऐसे अर्थतंत्र में हमारा अपना कहने को कुछ नहीं होता।

सम्पोषित आजीविका व रचनात्मक अर्थतंत्र परस्पर पूरक व्यवस्थाएं तथा साधन एवं साध्य हैं। इसके लिए आजीविका के स्वरूप व परिमाण पर विचार करना अनिवार्य है। आजीविका की सम्पोषितता का आकलन, मात्र आर्थिक आधार पर नहीं किया जा सकता अपितु समग्रता की दृष्टि से इसकी कसौटी मानव कल्याण अथवा मानव विकास के साथ–साथ सृष्टि का सह–अस्तित्व मानी जा सकती है जिसमें उत्पादक का नैतिक–आचरण, उपभोग–व्यवहार और सामाजिक–समरसता जैसे घटक शामिल हों। आजीविका जीवन जीने की कला है। सम्पोषित आजीविका में वे नैतिक श्रमसाध्य प्रयास शामिल किए जा सकते हैं जो जीवन यापन के लिए आवश्यक है, जिनके माध्यम से व्यक्ति अपनी निहित व अर्जित कुशलताओं और क्षमताओं का उपयोग अथवा उपयोगिता का सृजन कर अपने समाज की आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सकते हों तथा जो सामाजिक व आर्थिक समानता लाने में सहायक हों। आजीविका का सम्बन्ध आवश्यकता की संतुष्टि से है, आवश्यकताएं खड़ी करने से नहीं। यदि यह विचार मूल में रहे तो कोई भी आजीविका सम्पोषित विकास की कसौटी पर खरी उतर सकती है।

सम्पोषित जीवनशैली में विशेषकर स्वयं के लिए उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग से परहेज रखा गया है। यदि आपकी जरूरतें पूरी होने लायक आपको मिल जाता है तो अर्थोपार्जन की वृत्ति पर विराम लगाएं ताकि दूसरों के आजीविका के अधिकारों का जाने–अनजाने अतिक्रमण या हनन न हो, सभी को रचनात्मक उत्पादकता में सक्रिय भागीदारी का अवसर मिल सके तथा यत्र–तत्र–सर्वत्र जीवन ही जीवन हो। आजीविका जब बुनियादी जरूरतों की संतुष्टि की जगह विलासिता की पूर्ति का माध्यम, अतिरेक संचय वृत्ति का साधन, सामाजिक प्रतिष्ठा का

आधार तथा शक्ति अधिग्रहण का केन्द्र बनती है तब परिस्थितिकीय संतुलन डगमगा जाता है और समाज में अशांति व संघर्ष का साम्राज्य पनपने लगता है तथा कोई भी अपनी स्थापित आजीविका की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं रहता। एक ऐसी अंतहीन स्पर्धा की संभावनाएं सिर उठाने लगती है जिसका अंत परस्पर विनाश या हानि पर आकर ही रुकता है।

विनोबा भावे का मत रहा है कि अर्थव्यवस्था धन–आधारित नहीं वरन् श्रम–आधारित होनी चाहिए। श्रम से ही "श्री" का निर्माण होता है जो लक्ष्मी का प्रतीक है। लक्ष्मी और पैसे में यथेष्ट अंतर करना जरूरी है। लक्ष्मी "श्रम" के बिना नहीं आ सकती। लक्ष्मी आती है तो वैभव आता है, ईश्वरीय कृपा आती है, जबकि पैसा बढ़ने से मतभेद–मनभेद, ईर्ष्या–द्वेष, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, व्यसन आदि अनर्थ बढ़ते हैं।

कल्पवृक्षों के समाप्त होने पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव ने लोगों को अपनी आजीविका हेतु असि, मसि और कृषि आधारित श्रम का उपदेश दिया था जिसका संचालन मर्यादित व संयमित जरूरतों के परिमाण में उपलब्ध संसाधनों के नीतिमत्तापूर्ण दोहन की नींव पर टिका हुआ था और उसमें 'जिओ और जीने दो' की सह–अस्तित्वीय अवधारणा विद्यमान थी। मात्र भौतिक विकास से जीवन सुखी नहीं हो सकता, अपितु नैतिक मूल्य अपनाने से जीवन का विकास किया जा सकता है। हम प्रकृति से उतना ही लें जितनी कि हमें वास्तव में जरूरत है। प्रकृति को समानुपातिक रूप से लौटाने की नीतिमत्ता व मानवीय संवेदनशीलता अपने व्यवहार में अवश्य अपनाएं ताकि आदर्श अर्थतंत्र की नींव मजबूत हो सके एवं भावी पीढ़ी के हितों का भी संरक्षण हो सके।

गांधी जी ने **हिन्द स्वराज्य** में सभ्यता के मायने खोजते हुए सातत्यपूर्ण विकास के आयामों की व्याख्या की है। इसमें उन नैतिक प्रतिमानों को शामिल किया गया है जिनसे आत्मसंतुष्टि, और साथ ही दूसरों की खुशी, सम्मान व प्यार, मिलता हो। गांव सबसे छोटी किन्तु पूर्ण स्वावलम्बी इकाई के रूप में विकसित होने का माध्यम बने। आजीविका के आधुनिकीकरण एवं अर्थतंत्रीय सुदृढ़ता के संदर्भ में उनका मत था कि हमें अपने मस्तिष्क की खिड़कियों को खुला रखना चाहिए ताकि बाहरी विचार उसमें प्रवेश कर सकें किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वे कहीं हमारी जड़ों को ही उखाड़ न फेंक दें। सम्पोषित आजीविका के निर्धारण में उनका एक कथन इस पथ के अनुगामियों को आन्तरिक ताकत प्रदान कर सकता है – "मैं तुम्हें एक जादुई ताबीज देता हूं कि जब कभी

तुम मुश्किल में हो तो ऐसे गरीब व्यक्ति का चेहरा याद करो जिसे तुमने अपने जीवन में देखा हो। उस पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखकर निर्णय लो तो हर मुश्किल आसान हो जायेगी।''

जैन धर्म में 'उत्तम खेती, मध्यम बान' का उल्लेख किया गया है तथा नौकरी व चाकरी को जघन्य बताया गया है। सम्पोषित आजीविका के पैमाने पर हम इसका विश्लेषण करें तो हम समझ पायेंगे कि खेती का सम्बन्ध खरी उत्पादकता से है। विनोबा जी सर्वोदय के अर्थकारण में खेती को पूजा का विषय मानते हुए हर एक के लिए अनिवार्य मानते हैं। यह एक श्रमसाध्य कार्य है जो व्यक्ति व समाज की आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है। इसमें कृषि हेतु सहायक कार्यो को भी शामिल किया जाता है। वणिक कार्य जो उत्पाद के विक्रय में मदद–रूप माना जाता है उसे यह दर्शन मध्यम मानता है क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष श्रम व रचनात्मकता का भाग अपेक्षाकृत कम होता है। दुख की बात यह है कि सम्पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया के लाभ का एक बड़ा भाग इस वणिक वर्ग की झोली में चला जाता है जो उत्पादन की श्रमसाध्य प्रक्रिया से सीधा ताल्लुक नहीं रखता अपितु मूल्यवर्धन व वाक्चातुर्य का ही उपयोग अधिक करता है। अर्थतंत्र की दशा व दिशा इस असंतुलन के चलते बिगड़ी है। स्थिति तो तब बदतर बन जाती है जब वणिक अनुचित व अमर्यादित लाभ कमाने हेतु वायदे के सौदे खड़े कर अर्थतंत्र में काल्पनिक बदलाव लाने का जानबूझकर प्रयत्न करता है।

अब बात कर लें नौकरी अथवा चाकरी की जिसे जैन दर्शन जघन्य मानता है किन्तु इसका वर्तमान अर्थतंत्र में एक बड़ा हिस्सा है। इसने तो सामाजिक प्रतिमानों मे भी आमूलचूल परिवर्तन कर यह पैमाना ही एकदम उलट दिया है जिसमें नौकरी करने वाला उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित है और कृषि तथा कृषि सहायक प्रवृत्तियों में रत व्यक्ति निम्न स्तर पर है। नौकरी की जघन्यता का अपने तरीके से तार्किक विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि इस तरफ झुकाव रखने वालों में उद्योग साहसिकता अर्थात् जोखम उठाने की वृत्ति का अभाव होता है, और स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता व स्वयं में विश्वास की कमी होती जाती है जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के विकास की दृष्टि से घातक ही कही जा सकती है।

जैन दर्शन से जुड़ा ''जिन'' शब्द संयममय जीवनशैली और मर्यादित आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करता है जिनका परिमाण उच्चतम स्तर पर पहुंचने के साथ घटता जाता है। इस शब्द का अन्य निहितार्थ

है – पंचेन्द्रियों पर विजय पाना। पंचेन्द्रिय विषयों का नियमन जैन श्रावकों की जीवनचर्या की आचार–संहिता का अभिन्न अंग है जो अपरिमित आजीविका के परिमाण पर रोक लगा कर संसाधनों का शोषण रोकने में सहायक होता है। नैतिक मान्यता यह रही है कि आजीविका संचालन में लाभ का परिमाण भी "आटे में नमक के बराबर" होना चाहिए अन्यथा अतिरेक की स्थिति में भोजन की जो दशा होती है, आजीविका के वही परिणाम समाज में परिलक्षित होंगे। इसके साथ–साथ आजीविका से अर्जित लाभ का एक उचित भाग जरूरतमंद लोगों के कल्याण व सृष्टि के संरक्षण के लिए पृथक करना चाहिए। जैन धर्म के अतिरिक्त विश्व के अन्य सभी धर्मों ने भी ऐसा निर्देश किया है। आज के व्यावसायिक जगत में व्यवसाय की सामाजिक जवाबदारी को व्यवस्थित करने का विधिक प्रयास भी किया गया है जिसके तहत एक निश्चित स्तर से अधिक आर्थोपार्जन करने वाली इकाइयों को अपने लाभ का 2 प्रतिशत भाग समाज के कल्याण के लिए व्यय करना होगा।

जैन दर्शन सहजीवन एवं सहअस्तित्व की मैत्रीय अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें अवसर का अनुचित लाभ उठाने की वह मानसिकता नहीं है जिसे आधुनिक सभ्य भाषा में सयानापन, प्रबंधकीय चातुर्य व कौशल्य कहा जाता है, अपितु मानव मात्र के प्रति असीम करुणा है और परस्पर अस्तित्व का स्वीकार्य है।

(डॉ. लोकेश जैन गुजरात विद्यापीठ, ग्रामीण परिसर, रांधेजा–गांधीनगर (गुजरात)–382620, में ग्रामीण प्रबन्ध अध्ययन केन्द्र में एसोसियट प्रोफेसर हैं।

उनकी बहन डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन जन सहभागिता विकास संस्थान, जयपुर, में प्राकृत एवं जैन दर्शन की मानद शोध निदेशक हैं।

इस लेख से सम्बन्धित विषय पर उन्होंने गहन अध्ययन किया है। इस लेख में उसका सारांश दिया गया है। – सम्पादक)

कवि और कवि–सम्मेलन

— श्री कैलाश नारायण टण्डन

(जो विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है वह 1950–60 के दशक के साहित्यिक परिदृश्य को वर्णित करता है। वर्तमान में परिदृश्य कुछ बदल गया है परन्तु जिस स्थिति का विवरण यहां दिया जा रहा है साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए उसकी जानकारी लाभकारी होगी।)

कवि नाम से सम्बोधित किये जाने वाले व्यक्तियों की आजकल कमी नहीं है। कविता करना लोगों के बायें हाथ का खेल हो गया है। 'नारि मुए गृह सम्पति नासी, मूड़–मुड़ाय भये सन्यासी' वाली कहावत न जाने कितनों पर लागू होने लगी है। जिसे प्रेम में असफलता मिली या निराशा का अनुभव हुआ, वही विरह के गीत गाने लगा। किसी की कविता में चन्द्रिका चर्चित रात्रि का वर्णन है, तो किसी में तारों भरी जवान रात का, यदि कोई अपनी प्रियतमा को स्वप्न में देखता है तो कोई उसकी हंसी को पूर्णिमा के चांद में। काव्याकाश में विभिन्न वादों के बादल छा रहे हैं। रहस्यवाद और छायावाद काव्य वाङ्गमय के प्रमुख वाद हो गये हैं, परन्तु प्रगतिवाद इनका गला घोंटने पर उतारू हो गया है। रहस्यवाद और छायावाद की समाधि पर मार्क्सिस्ट विचारधारा वालों ने यथार्थ का महल बनाने की योजना रखी है। प्रगतिवादी कवि चाहते हैं उस समाज का चित्रण जिसमें गरीब जनता का शोषण किया जा रहा हो, उसका खून चूसा जा रहा हो और उसके कंकालमात्र पर पूंजीवाद का भव्य महल बनाया जा रहा हो। प्रगतिवादी चाहता है केवल यथार्थ का चित्रण, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी उसे असह्य है। पिंगल के नियम आज मृत से हो गये हैं। काव्य के क्षेत्र में स्वच्छन्दता का साम्राज्य हो गया है। कोई पिंगल के नियमों का विरोधी है, तो कोई तुकबन्दी का। कोई आदर्शात्मक काव्य के विरुद्ध आवाज उठाता है, तो कोई यथार्थवाद को नीरस और कटु सत्य कहकर मजाक उड़ाता है। स्वच्छन्दता प्रेमी कवियों के हाथ कविता अब सभी बन्धनों से मुक्त हो गयी है। वह स्वच्छन्द और अबाधगति से बहती चली जा रही है – पिंगल शास्त्र का उस पर अब कोई अंकुश नहीं है।

अपनी–अपनी स्वतन्त्र विचारधारा लेकर कवि जनता की वाहवाही प्राप्त करने के लिये काव्य क्षेत्र में आ डटे हैं। विचारों में, सूझ में, कल्पना में, उड़ान में नवीनता का अभाव ही आधुनिक काव्य की विशेषता है। वही पुराने उपमान, उपमा और उपमेय काव्य का विषय बने हुऐ हैं। यद्यपि

अलंकारों की छटा अब हमें कम देखने को मिली है परन्तु अर्थ तो इतना गूढ़ होता है कि साधारण पाठक केवल सिर ही हिला सकता है। पहले कवि गागर में सागर भरते थे, पर अब तो 'अधजल गगरी छलकत जाये' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

वैसे तो कवि बरसाती मेढ़कों की तरह बढ़ते चले जा रहे हैं, पर वास्तव में कवि थोड़े ही हैं। कवि सम्मेलनों में ऐसे ही कवि आपको अधिक मिलेंगे जो हर कवि सम्मेलन में किसी–न–किसी बड़े कवि की पूंछ बने हुए पहुंच जाते हैं। ये किराये के टट्टू जो अपना काव्य प्रदर्शन करते हैं, उससे जनता केवल बोर ही हो सकती है। ऐसे ही कवियों से अधिकतर मंच घिरा रहता है। उनकी कविता में आपको मिलेगी हुबहू गीत की विशेषताएं और फिल्मी गानों की तर्ज। इसके साथ ही साथ उनके पढने का भी ढंग होगा अजीब जिसमें कभी होगा गलेबाजी का प्रदर्शन और कभी होगी आलाप और तान की धूम। राग–रागनियों के बल पर उन मनोभावों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है जो कवि अपनी कविता द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते।

जो वास्तव में कवि कहे जा सकते हैं, वे हो गये हैं सैद्धान्तिक। कुछ का सिद्धान्त है कवि सम्मेलन में न जाना और कुछ का रेडियो स्टेशन जाना और कुछ तो अपनी कविताएं केवल पुस्तक रूप में ही जनता के सम्मुख लाना चाहते हैं। किसी–किसी का तो कण्ठ ही इतना मधुर है कि वह मंच पर जाना ही नहीं चाहता, क्योंकि उसके कविता पाठ पर जनता को अपने स्थान से भागना या कानों को बन्द कर लेना स्वाभाविक ही है। किसी को कविता पाठ करने में शर्म लगती है तो किसी को मंच पर आने में पसीना छूटने लगता है। किसी को कवि सम्मेलनों में पर्याप्त दक्षिणा न मिलने की शिकायत है, तो किसी को अपने स्वाभिमान की रक्षा करने की लत है।

एक नहीं हजार नखरे कवियों के हैं। उस पर मजे की बात यह है कि जो कविता अच्छी लिखते हैं, वे अच्छी गा नहीं सकते और जिनका कण्ठ मधुर है उनकी कविता तुकबन्दी और शब्दों के भद्दे संग्रह के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। सिर खुजलाकर कविता लिखने वालों की कमी नहीं है और ऐसे ही महानुभाव कवि सम्मेलनों में श्री गणेश करते हैं तथा धीरे–धीरे उत्सुक जनता उनकी कविता पर मुग्ध होकर खिसकने लगती है। यद्यपि सुन्दर, फिर कहो आदि के शब्दों से पंडाल तक गूंज उठता है, परन्तु कवि को दिखावटी वाहवाही मिलने के अतिरिक्त जनता के पल्ले

कुछ नहीं पड़ता। ऐसी कोई कविता नहीं होती जिसकी तारीफ न की जाये। अगर वास्तव में कवि को गलेबाजी आती हो तो कविता की परख का अधिकार साधारण रूप से कानों को ही दे दिया जाता है और अगर कोई कवियित्री रंगमंच पर आ गयी तो फिर कविता को कसौटी पर रखने का अधिकार आंखों को ही देना पड़ता है।

चूंकि भारत स्वतंत्र है, इसलिये मनमाने ढंग से लिखने के लिये सभी आजाद हैं और कवि तो सदैव ऊटपटांग कहने के लिये आजाद होता ही है। फिर यदि उस पर आलोचक रहम दिल हो तो कहना ही क्या! यद्यपि इसका लाभ उदीयमान कहे जाने वाले कवि ही अधिक उठाते हैं, पर दूसरे भी इससे अपने को कम वंचित नहीं रखते हैं। कविता को कल्पना के चरमोत्कर्ष पर पहुंचा कर उसे दुरुहता की मूर्ति बना देना आज के भावुक कवियों की विशेषता है। कल्पना की उस स्टेज का अनुमान कीजिये, जहां वह रहस्यवाद को भी अपनी दुरूहता में हरा देती हो!

कविता पाठ के पूर्व कुछ नखरे दिखाना कवियों के लिये स्वाभाविक ही रहता है। पानी पीकर कविता कहने की आदत अथवा कविता पाठ करते समय पानी की आवश्यकता का अनुभव करना हालांकि पुरानी चीज हो गयी है, पर वह परिपाटी चली ही आ रही है। यह आदत तो कुछ लोगों की ऐसी पड़ गयी है कि छुड़ाये नहीं छूटती। पानी का गिलास उनके सामने न हो तो उन्हें उत्साह नहीं मिलता, परन्तु कभी–कभी वे अपनी इस आदत से जनता के उत्साह पर ही पानी डाल देते हैं। गले को सींचते हुए वे जो अपने दिल को तरोताजा ठण्डी आहों को निकालकर सुनने वालों का मनोरंजन करते हैं वह शायद मलयानिल की वायु से कम आनन्द दायक नहीं होता। कवि सम्मेलन में कभी चाय के कुल्हड़ पार्किंग करते नजर आते हैं, तो कभी सिगरेट के धुवें के बादल सुनने वालों के सिर पर मंडराते हुए पण्डाल का आलिंगन करते हैं। पान की तश्तरियां कभी नाचतीं नजर आती हैं, तो कभी थिरकती हुई। अच्छा खासा शाही दरबार लग जाता है। सभापति के दायें–बायें बैठने वाले कवियों को देखकर गांव की पंचायत का दृश्य आंखों के सामने घूम जाता है।

कवि मंच पर बैठकर कविता पाठ करने के पूर्व कुछ न कुछ प्रस्तावना के रूप में अवश्य कहते हैं। यद्यपि इसमें आत्मप्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होता, पर यह मानना पड़ेगा कि यह रोचक सामग्री का एक सुन्दर स्तवक होता है। विभिन्न कवि थोड़ा–थोड़ा ही कहकर सम्मिलित रूप से एक अच्छा खासा भाषण दे डालते हैं। बेजोड़ नमूना देखिये :

"मैं आपके सम्मुख अपनी वे रचनाएं प्रस्तुत करूंगा जो कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। हालांकि बार–बार सुनने के कारण कुछ लोग उन्हें पुराना कहेंगे, पर मेरे विचार से उन्हें पुराना कहना उनका उपहास करना होगा। मेरी रचनाओं में है देश की समस्याओं की झलक, कर्तव्य की ओर निर्देश, शुद्ध रहस्यवाद का पुट और छायावाद की झांकी। मेरी रचनाएं मेरे हृदय की उपज हैं। मैं सिर खुजलाकर कविता लिखने का आदी नहीं हूं। मैं सम्पादकों तथा आलोचकों को खरी–खोटी सुनाता रहता हूं और उन्हें लथाड़ता रहता हूं इसलिये वे मेरी कविता की सदैव कटु आलोचना करते रहते हैं। वास्तव में मैं अपनी कविताओं का प्रोपेगण्डा नहीं करना चाहता। मेरी कविता सब नहीं समझ सकते। और फिर बाल की खाल निकालने वाले आलोचक तो बिल्कुल नहीं। मेरी कविता मेरे हृदय की सच्ची और अकृत्रिम उद्गार होती है। मैं कविताएं तो बेशुमार लिखता हूं पर आपके सम्मुख वे ही उपस्थित करूंगा जो मेरी प्रेरणा और ईश्वरीय आशीर्वाद के फलस्वरूप मुझे प्राप्त हुई हैं। जो रचना मुझे नहीं जंचती, उसे मैं रद्दी कागज की टोकरी को समर्पित कर देता हूं। मेरे द्वारा अपमानित और तिरस्कृत न जाने कितनी रचनाएं सीमेंट की सड़क पर निराशा के आंसू बहाती हैं। कभी–कभी यही रचनाएं सड़क चलने वाले पढ़ लेते हैं और वे ही मुझे कुछ परिवर्तित रूप में किसी पत्रिका में छपी हुई मिलती हैं।

कविताएं लिखने के लिये तो अब तक न जाने कितनी लिख चुका हूं, पर अभी तक उनको न याद ही किया और न कहीं उतारा ही। कविताओं की संख्या अधिक होने के कारण अभी तक वे नोट बुक का आश्रय नहीं प्राप्त कर सकीं। केवल कुछ ही मुझे याद हैं, यद्यपि नोटबुक पर काफी लिखी हुई हैं, पर अभाग्यवश मैं अपनी नोटबुक लाना ही भूल गया। पन्द्रह वर्ष पहले मेरी कविताओं का संग्रह मेरे एक मित्र ने किया था, पर धनाभाव के कारण वह प्रकाशित न हो सका। यद्यपि वे अपने पास से पैसा खर्च करने को तैयार थे, पर मैंने यह उचित न समझा।

इधर कुछ दिनों से खांसी और जुकाम काफी परेशान कर रहा है। गला तो आप देखते ही है, कितना खराब हो गया है। आवाज भी पुराने रेकार्ड की तरह बिल्कुल बेमजा हो गयी है। मैं तो गले बाजी का कट्टर विरोधी हूं, क्योंकि वह कविता की आत्मा पर पर्दा डाल देती है। सुनने वाला राग रागिनियों के चंगुल में ऐसा फंस जाता है कि अपना विवेक तक खो बैठता है। ऐसे में अच्छी कविता की प्रशंसा करना कठिन हो जाता है। मेरी रचना में विभिन्न वादों का इतना सुन्दर समन्वय रहता है कि

कभी–कभी सभी वादों से परिचित लोग भी उसको समझ नहीं पाते। हालांकि मैं आपके लिये ऐसी रचनाएं लिखने की कोशिश करता हूं, जिन्हें आप आसानी से समझ सकें, पर ऐसी रचनाएं बेमजा होती हैं। उनको अगर बाजारू कहा जाये तो गलत न होगा। मेरी आत्मा बाजारू कविता लिखने की गवाही नहीं देती। मैं ऐसी स्थिति में अपनी भावनाओं का हनन नहीं कर सकता, अपनी आत्मा का गला नहीं घोंट सकता।

मैं तो कला का पुजारी हूं। मुझे कला से प्रेम है, मैं कला के लिये जिन्दा हूं और कला के ही लिये मरना भी चाहता हं। मैं जब लिखता हूं, तो दिल खोलकर लिखता हूं। मैं न तो किसी व्यक्ति के लिये लिखता हूं, न सम्प्रदाय के लिये, न समाज के लिये, न किसी धर्म जाति के लिये। मैं तो अपने दिल के हुकम की पाबंदी करता हूं। मेरी रचनाएं स्वांतः सुखाय होती हैं। न मैं उन्हें प्रकाशित करना चाहता हूं और न किसी को जबर्दस्ती सुनाना ही। मुझे धन की चाह नहीं है, क्योंकि धन तो कविता की आत्मा को घोंट देता है। कला कला के लिये होती है, इसमें मेरा पूर्ण विश्वास है। कला की उन्नति का बीड़ा मैंने उठा लिया है और उस पथ पर मैं बराबर अग्रसर हो रहा हूं।

कविता प्रेमी अब कम हो गये हैं। रियासतों में कवियों का मान–सम्मान होता था तथा दान–दक्षिणा मिलती रहती थी। कवि निश्चिन्त होकर काव्य साधना किया करते थे, पर अब कांग्रेस सरकार के राज में दिन भर जीविका के चक्कर में सिर और एड़ी का पसीना एक करने के सिवा और है ही क्या? सबेरे से शाम तक जीविकोपार्जन के कोल्हू में जुतने के बाद व्यक्ति इतना अधिक थक जाता है कि बस सबेरे ही आंख खुलती है। आज का कवि क्या करे? न वह स्वतन्त्र है और न जीविका की चिन्ता से मुक्त। उसका जीवन है संघर्षमय और उसी चक्कर में उसे भी पिसना पड़ता है, जिसमें यह धन की टोह में रहने वाली दुनिया अतीत काल से पिसती चली आ रही है। कवि एक कलाकार है, इस नाते उसे सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होना चाहिये, पर हो कुछ और ही रहा है! आज कवियों की दशा काफी गिर चुकी है। कला को पूछने वालों का अभाव सा है। सिनेमा और रेडियों ने सारी कलाओं को जहर–सा दे दिया है। कोई कवि किसी आफिस में क्लर्क है तो कोई किसी मिडिल स्कूल का अध्यापक। आर्थिक विषमता के इस युग में कला नष्ट होती जा रही है। पैसे के चक्कर में रहने वाली दुनिया के दिमाग में सदा पैसा ही नाचता है और वह पैसे में ही अपने भौतिक सुख का अनुभव करता है, परन्तु यह

वास्तव में बनावटी सुख है। कला के अभाव में मनुष्य का जीवन नीरस हो जाता है। मनुष्य यन्त्र की भांति दिन रात काम करता रहता है। यह सब इसी का परिणाम है कि मौज में कविता करने वाले कवियों की समाप्ति होती जा रही है। आज कवि पैसे में बिकने लगा है, पर अब भी ऐसे कवियों की कमी नहीं है, जिन्हें किसी भी भाव पर खरीदा नहीं जा सकता। आज कवि–सम्मेलन सफल नहीं होते, यदि कोई कवि–सम्मेलन सफल हुआ, तो समझिये कि ग्रह कुछ अच्छे थे अन्यथा न जाने कितने कवि सम्मेलनों में तो सुनने वाले ही दिखाई नहीं पड़ते। यदि समय की गति ऐसी ही रही और साथ में सरकार और जनता इस ओर से उदासीन रही, तो वह समय दूर नहीं है, जब कवि सम्मेलनों की समाधि पर आंसू बहाने वाले भी न मिलें।"

117/एच–2/56, पाण्डु नगर, कानपुर–208005

✧✧✧

नव वर्ष

– श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'

मंगलमय नव वर्ष देश में नव चेतना जगाये।
सुख, समृद्धि, सद्भाव, सरसता जन जीवन में लाये।।
नैतिकता को निज जीवन में कभी नहीं हम छोड़ें।
मानवता के लिए स्वयं को मानवता से जोड़ें।।
प्रेम, प्रीति, सद्भाव, समर्पण नूतन वर्ष बढ़ाये।
मंगलमय नव वर्ष देश में नवचेतना जगाये।।
सदा आगमन पर जन–जन ने स्वागत किया तुम्हारा।
तुम स्वर्णिम आशा जन–मन की जन–जन ने स्वीकारा।।
काल चक्र ने किन्तु तुम्हारे क्या–क्या रूप दिखाये।
मंगलमय नववर्ष देश में नवचेतना जगाये।।
राजनीति से नीति लुप्त हो गई विगत वर्षों में।
उलझ रहे सब दल आपस में सत्ता–संघर्षों में।।
भ्रष्ट आचरण, स्वार्थ–सिद्धि से मुक्त राष्ट्र हो जाये।
मंगलमय नव वर्ष देश में नवचेतना जगाये।।
नये वर्ष में यही कामना करते हैं नर–नारी।
पड़े स्वार्थी–भ्रष्ट जनों पर सच्चरित्रता भारी।।
पावन नूतन वर्ष सभी में बुद्धि–विवेक जगाये।
मंगलमय नव वर्ष देश में नवचेतना जगाये।।

'पदमा कुटीर', सी–27, बसन्त विहार, अलीगंज, लखनऊ–226024 ✧

दीपमालिका पर दीपछन्द

— श्री बालकवि बैरागी

अंधियारा जब आंख तरेरे और अमावस ऐंठे
इनको उत्तर दे न सकोगे गुमसुम बैठे बैठे
इनकी अकड़ हेकड़ी इनकी छू मंतर करने को
खुद को ही तैयार करो कुछ जीने को मरने को
मैं बिल्कुल तैयार खड़ा हूं मुझे जला कर देखो
मुझको सब 'दीपक' कहते हैं हुकुम चला कर देखो।।

✧

मैं दीपक हूं, मिट्टी का हूं, तुमने मुझे बनाया
अंधियारी काली रातों की छाती पर बैठाया
स्नेह सनी बाती ने जल कर रात बना दी गोरी
तुमने खुद ही सब देखा है, बात नहीं है कोरी
कोरी बातें करने से तो होगा नहीं उजाला
इस छोटे से महामंत्र को तुमने कितना टाला।।

✧

बेशक शब्द सनातन है पर नये सिरे से जांचो
एक बार 'संघर्ष' लिखो और गहरे मन से बांचो
और किसी से पूछोगे तो नाहक उलझा देगा
माटी के दीपक से पूछो फौरन समझा देगा
अंधियारे से लड़ना सचमुच कोई छोटा काम नहीं
इसके शब्द कोष को देखो वहां शब्द 'आराम' नहीं।।

कविनगर, पो. मनासा–458110 (जि. नीमच, म.प्र.)

✧✧✧

मौन मन

— श्री अमर नाथ

हे मौन मन! मुझको बता तू, दे रहा किसकी सदा?
अब बैठ तीरे—नर्मदा तू कुछ बता उसका पता
हे मौन मन! मुझको बता।।1।।

है कौन वो, जपता जिसे? है कौन वो, भजता जिसे?
है कौन वो, रटता जिसे? तू नाम तो उसका बता
हे मौन मन! मुझको बता।।2।।

तू झांकता है क्यों गगन? क्यों बैठकर इस वन—निजन?
जीवन अपना करके 'वन' क्यों कामनाओं को ठगा?
हे मौन मन! मुझको बता।।3।।

तू चाहना जिसकी करे, तू नाम जिसका भी वरे
तू देख पगले! मन परे, तुझसे हमेशा वो सटा
तू दे रहा जिसकी सदा।।4।।

है नहीं तुझसे अलग वो, हो नहीं सकता विलग वो
धो कपट को, खोल पट को, तू देख तब उसकी छटा
तू ढूंढता जिसको सदा।।5।।

बस जरा सा ध्यान धर ले, देह का अभिमान तज ले
झूठ अपना ज्ञान तज ले, तू हाथ उसको दे थमा
तू खुद खुदी को दे मिटा।।6।।

पाये तभी उसका पता।
तू, दे रहा जिसकी 'सदा'?

401—ए, उदयन—1, बंगला बाजार, लखनऊ—226002

एक श्रावक के मनोगत विचार

– श्री प्रेमचंद जैन

जैन धर्म में साधु संस्था और विद्वत्–जन का जो मर्यादाहीन आचरण पढ़ने, सुनने और देखने को मिल रहा है, उससे धर्म की छवि धुंधली हो रही है। उस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है ताकि जैन–धर्म आलोचना का विषय न बने।

यह भी आवश्यक है कि जिन महापुरुषों की हम रोजाना स्तुति करते हैं, उनकी जीवनी जन–सामान्य की जानकारी के लिए प्रकाशित हो।

पुरातन काल में मुसलमानों द्वारा जिन मंदिरों आदि को नष्ट कर दिया गया था उनके बारे में समुचित जानकारी दी जाये, और उनके नव निर्माण का प्रयास भी किया जाये। यथा, जूनागढ़ में राजुल जी का महल जहां आस–पास कब्र ही कब्र बना दी गई हैं।

जहां पर पूजनीय स्थान दूसरों के कब्जे में हैं जैसे कि सम्मेद शिखर जी में "कल्याण निकेतन" में पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है परन्तु वह सी.आर.पी. बटेलियन के कब्जे में है। दुर्भाग्य की बात है कि अब तक हमारे तीर्थ क्षेत्र कमेटियों के पदाधिकारियों का ध्यान उस ओर नहीं गया, जब कि अनेक मंदिरों का निर्माण हो रहा है। इस प्रकार के प्रसंगों पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए।

विवाह के सम्बन्ध में समाज में बड़ी दुःखद स्थिति है। पढ़ी–लिखी लड़कियों को स्वयं विवाह कर लेने के बाद अंत में दुखी होकर अकेला जीवन बिताना होता है। इसके लिए तेरा–मेरा और उसका न कहकर सब जैन सम्प्रदायों को मिलकर एक संगठन का गठन करना चाहिए जो मापदण्ड तय करे और दण्ड विधान बनाये ताकि हर कोई इस प्रकार के कार्य करने का दुःसाहस न कर सके। समाज में सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि अपने–अपने स्वार्थों को छोड़कर सभी सम्प्रदाय एक मंच पर इकठ्ठे हों और विचार–विनमय कर व्यवस्था बनायें। समाज में जो अराजकता है और जो मनमानी हो रही है उस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है। समाज में इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता है कि विवाह में व्यय नियंत्रित रहे और समाज की ओर से इस बात का ध्यान रखा जाये कि धन के कारण एक दूसरे को अवमानना न झेलनी पड़े।

सांवला सदन, बटक भैंरू गली, बूंदी–323001 (राज.)

✧✧✧

भावात्मक सशक्तिकरण एवं युवा पीढ़ी के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों का बढ़ता महत्व

— श्री प्रफुल्ल पारख

भाव—प्रधानता मानव मनोवृत्ति का अनन्य हिस्सा है जो हमारे जीवन को सम्पूर्णता प्रदान करता है। भावात्मक अभिव्यक्तियां प्रेम, सुख, दुख, क्रोध, घृणा जैसे विविध माध्यमों से प्रकट होती हैं, जिसका अनुभव हम सभी दैनिक जीवन में करते हैं। सैद्धांतिक रूप से भाव एक वैचारिक स्थिति है जो उत्पन्न होती है, जो न तो सुविचारित ही होती है और न ही सुनियोजित। भावात्मकता, सही अर्थों में मानव का श्रृंगार है, जो उसे नव रूप प्रदान करती है। किसी भी अर्थ में भाव, मानव के बलशाली या दुर्बल होने का प्रतीक नहीं है; भावों का खुलकर प्रदर्शन मानव की निखालस व निर्मल छवि का परिचायक है। पुरुष हो या महिला प्रकृति—प्रदत्त भाव स्थितियां, लिंग भेद से अबाधित दोनों में ही समान रूप से पायी जाती हैं, किन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब समाज लिंग भेद के आधार पर भाव प्रदर्शन में सीमाओं का निर्धारण करने लगता है।

किशोरावस्था में किशोर और किशोरियां दोनों ही उनमें विकसित हो रहे पुख्त वय के रूपांतरणों को महसूस करने लगते हैं। वस्तुतः यह स्थिति मानव विकास के शारीरिक एवं वैचारिक संक्रमणकाल का दौर है, जो यौवनारंभ एवं वयस्कता का संधिस्थल है। किशोरावस्था में हारमोन परिवर्तन व भावनात्मक खलबलियों के कारण किशोर और किशोरियां सामान्य जीवन जीने में अनेक दुर्भरताओं का सामना करते हैं। यह वह अवस्था है जहां समयानुकूल मार्गदर्शन, आत्मीयता व देखभाल के अभाव में वे गुमराह हो सकते हैं।

युग परिवर्तन के इस दौर में सर्वाधिक दुष्प्रभाव परिवार नाम की संस्था पर पड़ा है। एक ओर परिवार का कार्यक्षेत्र, उद्‌देश्य एवं उसकी परिभाषा भी बदली है, वहीं दूसरी ओर परिवार के सदस्यों के मध्य सामंजस्यता का अभाव एवं संवादहीनता की स्थितियों का निर्माण हो रहा है। वैयक्तिक विचारधाराओं से सिंचित आज की नयी पीढ़ी उन व्याधियों से ग्रसित है जो भावनात्मक विकारों को जन्म देती हैं, जिससे परिवार एवं समाज में असंतुलन विकसित हो रहा है। नयी पीढ़ी की जीवनशैली, उस पर पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव, नव—तकनीक का आगमन आदि ऐसे अनेक विकट विषय हैं जिनसे परिवार के सदस्यों के मध्य गहरी

वैचारिक खाइयां निर्मित हुई हैं जो किशोर ओर किशोरियों के लिए मानसिक दबाव का कारण हैं। यही मानसिक दबाव नयी पीढ़ियों में वर्ष प्रतिवर्ष आत्महत्याओं की दर में वृद्धि का मूलभूत कारण है, जिसके आने वाले वर्षों में अधिक गम्भीर रूप धारण करने की संभावनाएं हैं।

किशोरियों के मामले में विशेषकर सामाजिक प्रतिबंधों के चलते समस्या मात्रागत रूप से गंभीर बन जाती है जो उनमें भावात्मक कुंठाओं को जन्म देती हैं। सामान्यतः यह पाया गया है कि किशोरावस्था में अधिकांश किशोरियां भावात्मक नकारात्मकताओं से ग्रसित रहती हैं। भारत में ही नहीं वरन् दुनिया के सभी देशों में चाहे विकसित हो या अर्धविकसित, महिलाओं की समानताओं का मुद्दा महत्वपूर्ण बनता जा रहा है व समाज में व्याप्त असमानताओं के विरुद्ध जंग छिड़ चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महिलाओं द्वारा अपनाया गया "प्लेनेट 50–50" कार्यक्रम, समस्त विश्व की महिलाओं हेतु वर्ष 2030 तक सहानुभूतिगत सामाजिक व अन्य स्थितियों की बहाली का सन्देश दे रहा है। लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त करने का स्वप्न, मानवीय आधारों के मद्देनज़र महत्वपूर्ण व आवश्यक कार्यसूची में सम्मिलित है व अब किशोरियों को बाल्यकाल से ही उन्हें प्रहारात्मक भावात्मकता के प्रतिकार हेतु सशक्त करने की आवश्यकता है। यह सशक्तिकरण बहु–आयामी होना चाहिए जिसमें भावात्मक सुदृढ़ता के साथ–साथ आर्थिक व सामाजिक मुद्दों का भी समावेश होना चहिए, क्योंकि अध्ययनों से ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिलाएं दोनों ही भावात्मक घर्षणों से गुजरते हैं किन्तु महिलाओं में प्रतिकार क्षमताएं कम होने के कारण भावात्मक दुर्घटनाओं की वे प्रायः शिकार हो जाती हैं। अतः यह महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है कि किशोरियों को बाल्यकाल से ही भावात्मक रूप से सशक्त कर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उनका विकास, समझ एवं अन्वेषण संभव हो सके। भावात्मक स्थितियों के प्रति समझ एवं भावनाओं पर नियंत्रण व स्वयं के विचारों की स्पष्ट व योग्य तरीके से अभिव्यक्ति हेतु शिक्षा अनिवार्य है।

सर्वाधिक जनसंख्या में चीन के बाद हमारा देश प्रथम क्रम पर है। किन्तु युवा जनसंख्या में हम विश्व में प्रथम स्थान पर हैं। 45 वर्ष से ऊपर की उम्र के व्यक्ति देश में मात्र 18.3 प्रतिशत है। 2001 की जनगणनानुसार 81.3 प्रतिशत जनसंख्या 45 वर्ष से कम आयु वालों की है। सर्वाधिक युवाओं का देश भारत, निश्चित ही हम सब देशवासियों हेतु गौरव का विषय है।

वरिष्ठ पीढ़ी का यह सौभाग्य ही माना जायेगा कि उन्हें युवा एवं भावी पीढ़ी के पालन–पोषण, देखभाल एवं निर्देशित करने आदि के अतिरिक्त उनके भविष्य को योग्य व सही आकार देने का उत्तरदायित्व है। बदलती परिस्थितियों एवं द्रुत गति से आ रहे सामाजिक व अन्य परिवर्तनों के माहौल में क्या वरिष्ठ एवं कनिष्ठ पीढ़ियों के मध्य समझ, सम्मान एवं संवेदनाएं वांछित मात्रा में विद्यमान हैं? वर्तमान युवा पीढ़ी निश्चित ही पुरानी पीढ़ी से अधिक क्षमतावान है क्योंकि उन्हें डिजिटल टेक्नोलोजी नामक छठी इंद्रिय का वरदान प्राप्त है। समय के साथ तालमेल बिठा लेने में युवा पीढ़ी को प्रकृतिजन्य महारत हासिल है, किन्तु प्रतिस्पर्धा के युग में जीवन–यापन के साथ उत्कर्ष प्रदर्शन एवं निश्चित परिणामों की प्राप्ति, युवा पीढ़ी की विवशता है और आवश्यकता भी। आज की इस नव पीढ़ी को विविध विकल्प उपलब्ध हैं, जो उनके लिए वरदान भी हैं और अभिशाप भी हैं।

नई व पुरानी पीढ़ियों के मध्य धरातलीय अंतर अब वास्तविकता बन चुका है, जो मात्र हमारे देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अनेक समस्याओं का कारण है। संवेदनशीलता कम होने के साथ, बढ़ती संवादहीनता की स्थिति, पुरानी व नई पीढ़ियों के बीच की मानसिक व वैचारिक खाई को वृहदता प्रदान कर रही है। निर्मित हो रही इन परिस्थितियों हेतु मात्र नई पीढ़ी को उत्तरदायी ठहराना कितना उचित है? मानव प्रकृतिजन्य प्रभुत्व, क्या इस समस्या का मूल कारण है जो पुरानी एवं नई पीढ़ी के मध्य सामंजस्य बर्करार रखने में अवरोध रूप है? या फिर वैचारिक जड़ताओं से ग्रस्त समाज स्वयं के अनुभवों पर अडिग रह कर आधुनिक युग की आवश्यकताओं के मद्देनज़र परिवर्तनों हेतु सुसज्ज नहीं है? यह समस्या दिन–प्रतिदिन गहराती जा रही है। जिसका हल पुरानी पीढ़ी के पास ही है। मात्र दृष्टि परिवर्तन, नई व अनुकूल वैचारिकता में ही समस्या का समाधान है जिससे नई पीढ़ी के साथ आदर्श एवं मधुर सम्बन्धों के नवयुग का सूत्रपात संभव है।

राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय जैन संघटना, लेवल 4, मूथा टॉवर, लूप रोड, डॉन बास्को चर्च के पास, येरवदा, पुणे–411006

उन्नति के सोपान

— आचार्य श्री कनकनंदी जी

हमारे अंदर शक्ति है, उसका चाहे सदुपयोग कर लो, चाहे दुरुपयोग। सदुपयोग करोगे तो स्व—पर उपकार होगा, दुरुपयोग करोगे तो स्व का अहित ही होगा। एक लड़का था। बच्चों को मारता—पीटता था, इसलिए उसका नाम दृढ प्रहारी पड़ गया। गांव के भद्र व्यक्ति राजा से बोले — इसको दंड दो। राजा की आज्ञा से घर वालों ने उसे घर से निकाल दिया। वह डाकू दल में पहुंच गया। खूंखार डाकू बन गया। तलवार से प्रहार करता था। डाका डालने लगा। एक ब्राह्मण की गाय थी। उसने तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिये। ब्राह्मण ने प्रतिकार किया तो उसके भी दो टुकड़े कर दिये। ब्राह्मणी के भी दो टुकड़े कर दिये। उसमें से भ्रूण निकल आया, रक्त भी निकला, जिसे देखकर उसे बोध हो गया जैसे राजा अशोक को कलिंग के युद्ध में मुर्दो को देखकर वैराग्य हो गया था। बस उसी समय तलवार छोड़ देता है, उसका पाषाण हृदय पिघलता है, उसी समय प्रतीज्ञा कर लेता है कि फिर कभी तलवार नहीं उठाऊंगा।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं — एक, वे व्यक्ति जो आलसी व कायर होते हैं तथा कार्य को प्रारंभ नहीं करते, जो सोचते हैं काम में फेल हो जाऊंगा तो क्या होगा, वे निम्न श्रेणी के होते हैं। वे कभी उन्नति नहीं कर सकते। दूसरे, कुछ व्यक्ति कार्य प्रारंभ तो कर देते हैं परन्तु बीच में विघ्न आने पर छोड़ देते हैं। जैसे उत्तर कुमार युद्ध में जाता है रथ में बैठकर, परन्तु जब शत्रु की सेना की आवाज दूर से सुनता है तब कहता है, सेना को वापस करो, रथ वापिस करो। ऐसे पुरुष कायर होते हैं, नपुंसक होते हैं। तीसरे, कुछ ऐसे लोग हैं जो विघ्न आने पर शूर बने रहते हैं, कार्य को नहीं छोड़ते, ऐसे ही लोग अंत में विजयी होते हैं।

अणुरणीयान् महतोमहीयान् — हम अणु भी बन सकते हैं, महान भी बन सकते हैं। हमारे अंदर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य है। गुरु हमें याद दिलाते हैं कि तुम्हारे अंदर इतनी शक्ति है। प्रकाश की गति से भी तीव्र गति अणु की है और शुद्ध जीव की है।

भोग भूमि में शरीर निरोग होता है,, बस भोग ही करते रहते हैं। दीर्घकाल तक पुरुषार्थ को जगाते नहीं इसलिए मोक्ष नहीं जाते। सब सोये हुये हैं। बासी खा रहे हैं। पूर्व पुण्य का भोग रहे हैं। इसलिए जो जागते

नहीं उनका भाग्य सोता रहता है। जो जाग जाते हैं, वह पुरुषार्थ के लिए खड़े हो जाते हैं, वही मंजिल को प्राप्त कर लेते हैं। भोगभूमि में मोक्ष नहीं क्योंकि वहां क्रांति नहीं, घर्षण नहीं, पुरुषार्थ नहीं।

हिरोशिमा में एटमबम डाला गया, सब नष्ट–भ्रष्ट हो गया। एक दिन जापान जाग उठा। आज जापान के नाम का दुनिया सम्मान करती है। जितने Robot जापान में हैं उतने Robot सातों महाद्वीपों में भी नहीं है। इतनी उन्नति जापान ने कैसे की? क्योंकि जापानी लोग पुरुषार्थी हैं, स्वाभिमानी हैं, देशभक्त हैं। वहां पर यदि फैक्ट्री में कोई चीज बनायी, वह कुछ गड़बड़ बन गयी, खराब बन गई उसे समुद्र में डाल देते हैं, बेचते नहीं, क्योंकि यदि बेचेंगे तो विश्व बाजार में उनकी ख्याति घट जायेगी। हमारे देश में सब कुछ है। दुनिया के 60 प्रतिशत डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक भारत देश में हैं। परन्तु यहां पर भ्रष्टाचार बहुत है। विदेशों से हमारे भारतीय वैज्ञानिक व डॉक्टर भारत में आते हैं परन्तु यहां उन्हें उचित सम्मान नहीं मिलता, इसलिए फिर वापस चले जाते हैं।

कोई भी कार्य करने के लिए संकल्प चाहिये, संकल्प है तो सफलता है। पुरुषार्थहीन नहीं होना चाहिये। अनादि मिथ्यादृष्टि एक अंतर्मुहुर्त में श्रावक, मुनि, अरहंत, सिद्ध बन सकता है। नेपोलियन कहता था कि डिक्शनरी में से 'असम्भव' शब्द निकाल देना चाहिये। जो उद्यमी है वही वीर है, वही शूर है। आप तो भगवान हो, पुरुषार्थ करो, भगवान हो जाओगे।

———————————

धर्मदर्शन सेवा संस्थान, द्वारा सचिव डॉ. नारायणलाल कछारा, 55, रवींद्रनगर, उदयपुर–313001

✦✦✦

खड़ी बोली कविता का विकास और मैथिलीशरण गुप्त : ले. डॉ. स्मिता जैन (मो. 9931795428); प्र. मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. 32/2बी, गली नं. 2, शकरपुर, दिल्ली–110092; 2012; पृ. 536; मूल्य रु.500/–

डॉ. (श्रीमती) स्मिता जैन आरा में एच. डी. जैन कालेज में हिन्दी विभाग में वरिष्ठ व्याख्याता हैं। उन्होंने हिन्दी विषय में पटना विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। प्रस्तुत कृति उनका शोध–प्रबन्ध है। इसमें लेखिका ने मैथिलीशरण गुप्त जी की 1909 से 1965 ई. तक खड़ी बोली में काव्य रचना का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यद्यपि 1886 में श्रीधर पाठक ने 'एकांतवासी योगी' शीर्षक से अंग्रेजी कृति Hermit का खड़ी बोली में पद्यानुवाद किया था और अयोध्या सिंह हरिऔध ने 1914 में 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य की रचना भी की थी परन्तु खड़ी बोली की काव्य के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठापना मैथिलीशरण गुप्त ने ही की थी। हिन्दी की खड़ी बोली में गुप्त जी की पहली काव्य कृति 'रंग में भंग' 1909 में प्रकाशित हुई थी। 1912 में उनकी कृति 'भारत–भारती' प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने खड़ी बोली की काव्य के लिए उपयुक्तता को निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया। उनकी सभी कृतियां उनके निवास स्थान चिरगांव, जिला झांसी, से प्रकाशित हुई। अधिकांश कृतियां हिन्दू पौराणिक कथानकों पर आधारित हैं। उनकी कृतियों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखर है। हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली को काव्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठिापित करने के लिए गुप्त जी को 'राष्ट्र कवि' का सम्मान भी प्रदान किया गया था। यह उल्लेखनीय है कि गुप्त जी की रचनाओं का जो जन–मानस में प्रभाव रहा उसने हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान कराने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना में लेखिका ने विषय के महत्व पर प्रकाश डाला है। अध्ययन 7 अध्यायों में है जिनमें खड़ी बोली कविता की पृष्ठभूमि, मैथिलीशरण गुप्त का युग और परिवेश तथा उनका काव्य विकास, खड़ी बोली कविता के विकास में गुप्त जी का योगदान, उनके काव्य की विषयवस्तु का स्वरूप ओर उनके काव्य का रचना विधान, तथा उनकी काव्य भाषा और खड़ी बोली का विकास – की संयुक्तिक चर्चा की गई है।

यह उल्लेखनीय है कि गुप्त जी पर समीक्षात्मक साहित्य का लेखिका द्वारा समुचित रूप से उल्लेख किया गया है। हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी होगी।

अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठ–परामर्श : ले. प्रो. बसंत कुमार म. भट्ट; प्र. आर्षगुरुकुल महाविद्यालय, आबू पर्वत, देलवाड़ा (जि. सिरोही, राज)–307501; 2015; पृ. 254; मूल्य रु.250/–

प्रो. भट्ट अहमदाबाद में गुजरात यूनिवर्सिटी में संस्कृत विभाग में 1984 से 2015 तक आचार्य तथा अध्यक्ष रहे हैं। उन्होंने अपने निवेदन में स्पष्ट किया है कि वह **अभिज्ञानशाकुन्तल** के शोधपरक अध्ययन की ओर कैसे आकर्षित हुए। अध्ययन 9 अध्याओं में प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन में **अभिज्ञानशाकुन्तल** के भिन्न पाठों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत है। कालिदास की इस महत्वपूर्ण कृति के अध्येताओं के लिए यह अध्ययन रुचिकर होगा।

भज गोविन्दम् : डॉ. परमानन्द जड़िया (मो. 9305742516); प्र. मधुलिका प्रकाशन, 189/51, खत्री टोला, मशाकगंज, लखनऊ–226018; 2016; पृ.24; मूल्य रु. 25/–

90–वर्षीय साहित्यभूषण डॉ. परमानन्द जड़िया अभी भी रचनाधर्मिता में प्रवृत्त हैं। आद्य शंकराचार्य कृत **भज गोविन्दम्** का उन्होंने हिन्दी में काव्यानुवाद किया है। यह उनकी सर्जन–माला का 109वां पुष्प है। **भज गोविन्दम्** के दो भाग हैं – 'द्वादश मंजरिका' (शंकराचार्य द्वारा रचे गए 12 श्लोक) और 'चर्पट पंजरिका' (उनके शिष्यों द्वारा रचे गये 20 श्लोक)। जड़िया जी ने मूल भावार्थ के साथ अपनी उद्भावनाएं भी दी हैं।

आलोक पुरुष महावीर : ले. डॉ. चक्रधर नलिन, 254, चन्द्रलोक, अलीगंज, लखनऊ–226024 (मो. 7054619508); प्र. वेदान्त पब्लिकेशन्स, बालाजी हाउस, बीरबल साहनी मार्ग, लखनऊ; पृ. 32; मूल्य रु. 60/–

जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर की भक्ति से ओत–प्रोत यह रचना कविवर डॉ. चक्रधर नलिन द्वारा प्रस्तुत की गई है। काव्य रूप में प्रश्नोत्तर के द्वारा महावीर के जीवन और उपदेशों को प्रस्तुत किया गया। सामान्य जानकारी के लिए बालसाहित्य के रूप में यह पुस्तक उपयोगी है। 77–वर्षीय चक्रधर नलिन किशोरोपयोगी एवं बालोपयोगी काव्य कृतियों के सृजन के लिए विशेष रूप से विख्यात् हैं।

धर्ममंगल : सं. श्रीमती लीलावती जैन, (मो. 9326595877); ऋतुपर्ण सोसायटी बिल्डिंग, सी–1001, नदीपूल रोड, बाणेर, पुणे–411045,

श्रीमती लीलावती जैन ने **धर्ममंगल** के वर्ष 31, अंक 9, दिनांक 2 नवम्बर 2016, में गौतम गणधर के सम्बन्ध में यह विशेषांक प्रकाशित किया है। भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी के सम्बन्ध में विभिन्न अनुश्रुतियों और कथानकों के आधार पर आत्मकथा की शैली में यह कथावृत्त प्रस्तुत किया गया है। इसमें श्री गौतम स्वामी पूजन भी सम्मिलित है जिसकी रचना श्री राजमल जी पवैया ने की थी।

जैन धर्म और दर्शन (शोधलेखमञ्जरी–प्रथम भाग); ले. डॉ. (श्रीमती) कमला पन्त, एसो. प्रो., संस्कृत विभाग, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (जि. नैनीताल), (मो.नं.9412403550); 2015; पृ. 245; मूल्य रु. 250/–

डॉ. (श्रीमती) कमला पन्त के जैन धर्म और दर्शन से सम्बन्धित 31 लेखों का संकलन इस पुस्तक में है। इसमें 27 लेख विभिन्न शोध पत्रिकाओं में यथा – शोधादर्श, तुलसीप्रज्ञा, श्रमण, जैन सिद्धांत भास्कर, अर्हत् वचन, प्राकृत विद्या, णाणसायर, Jain Journal, हैमवती, गुरुकुल पत्रिका और विश्व संस्कृतम् – में प्रकाशित हुए हैं तथा चार शोध लेख राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत किये गये हैं। इनका सम्पादन लेखिका के पिता प्रोफेसर जगन्नाथ जोशी ने किया है और जैसा कि उन्होंने अपने सम्पादकीय में लिखा है, "दार्शनिक विचारों को क्रमबद्ध विवेचन के साथ इन शोध लेखों में उपादेय, निष्पक्ष, स्वस्थ आलोचना एवं भारतीय दर्शन विशेषतया जैन धर्म एवं दर्शन की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत हुई है।" **शोधादर्श** में इनके तीन लेख क्रमशः अक्टूबर 1990, नवम्बर 1991 और जुलाई 1992 में प्रकाशित हुए थे जब वह शोध छात्रा थीं। जैन धर्म और दर्शन पर शोध कार्य करने के लिए वह धन्यवाद की पात्र हैं। पी–एच.डी. के लिए उनका शोध–प्रबन्ध "जैनसम्मत द्रव्यस्वरूपविश्लेषण" विषय पर था।

विदेशों में जैन धर्म; ले. श्री गोकुल प्रसाद जैन, एडवोकेट; प्र. श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ; 2011; पृ. 104; मूल्य रु. 25/–

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1994 में, द्वितीय संस्करण 2000, में और तृतीय संस्करण अप्रैल 2011, में प्रकाशित हुआ। इसमें विगत 6 हजार वर्ष से विश्व के इतिहास का अवलोकन करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में जैन धर्म की स्थिति का 56 अध्यायों में विवरण दिया गया है। जो विवरण दिया गया है वह जिज्ञासुओं के लिए स्वागत योग्य है।

समुत्थान सूत्र : सं. श्री त्रिलोकचंद जी जैन (मो. 09898239961); प्र. आगम नवनीत प्रकाशन समिति, 202, मूल अपार्टमेंट, 3, बंशीधर पार्क, रामपीर चौकड़ी, राजकोट–360007; 2016; पृ 288; मूल्य 100/–

समुत्थान सूत्र के विषय में अपने प्राक्कथन में सम्पादक महोदय ने यह सूचित किया है कि **नन्दी सूत्र** में श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण (अपरनाम देव वाचक) ने नन्दी के शुभज्ञान के वर्णन में अंग बाह्य कलिक आगमों की सूची में **समुत्थान सूत्र** का नाम अंकित किया है। इसके सम्बन्ध में विभिन्न अनुश्रुतियों का उल्लेख भी किया गया है, जिनमें यह विवाद भी चर्चित है कि यह सूत्र आगमिक है अथवा नहीं। इस सूत्र की प्राचीनतम उपलब्ध प्रति सम्वत् 1998 में रामनगर से प्रकाशित है; उसमें इसका गुजराती भाषा में शब्दार्थ–भावार्थ दिया गया है। पंजाबी भाषा में भी यह उपलब्ध है परन्तु हिन्दी भाषा में इसका शब्दार्थ–भावार्थ उपलब्ध नहीं है। श्री त्रिलोकचन्द जैन जी ने **समुत्थान सूत्र** का हिन्दी भाषा में भावार्थ विवेचन प्रस्तुत किया है। इस सूत्र के 8 उपदेशकों का 69 वर्गो में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त 5 परिशिष्टों में कुछ अन्य विषयों की चर्चा की गई है। स्थानकवासी सम्प्रदाय के विषय में परिशिष्ट 4 में चर्चा की गई है जो उपयोगी है; इसके अन्तर्गत महात्मा लोकाशाह (1425 से 1474 ई.) जिन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय की स्थापना की थी, का परिचय भी दिया गया है।

मानव मार्ग दर्शन (पंचम भाग) : ले. क्षु. सिद्धसागर; प्र. श्री झूमरमल बगड़ा, सुजानगढ़; पृ. 397

श्री सिद्धसागर जी (1924–1985 ई.) ने 51 वर्ष की आयु तक एक सद्गृहस्थ का जीवन जिया और अपने जीवन के अंतिम 10 वर्ष क्षुल्लक की दीक्षा लेकर ज्ञानार्जन किया तथा समाज सेवा की। 1985 ई. में उन्होंने अपने अध्ययन–चिन्तन से जो विचार समाजहित में उपयोगी समझे उन्हें **मानव मार्ग दर्शन** के रूप में पांच भागों में प्रकाशित किया। प्रस्तुत अंतिम भाग–5 में 8 वर्गो में जो विचार संकलित हैं उनका उद्देश्य जीवन निर्माण में सद्शिक्षा एवं सुसंस्कार द्वारा आत्मशक्ति का विकास करना, तथा अहिंसा, अनेकान्त और संयम को जीवन में पोषित करना, है। प्राप्त प्रति में मात्र 397 तक ही पृष्ठ उपलब्ध हैं, अंत के पृष्ठ इसमें नहीं हैं।

श्रवणबेलगोल का इतिहास और आर्ष परम्परा : ले. गणधराचार्य गणाधिपति श्री कुन्थुसागर जी; प्र. श्री कुन्थ विद्या शोध संस्थान, श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि, मु.पो. आलते, ता. हाथकांणगले, जि. कोल्हापुर; वर्ष 2016; पृ. 123

इस पुस्तक के लेखक मुनि कुन्थुसागर जी हैं जिनका गृहस्थ नाम कन्हैयालाल लोलावत था और जन्म 12–6–1946 को हुआ था। उन्होंने 21 वर्ष की अवस्था में मुनि दीक्षा ले ली थी। इस पुस्तक में उन्होंने भगवान बाहुबलि और आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती का परिचय दिया है और चन्द्रगिरि, विन्ध्यगिरि तथा श्रवणबेलगोल के पास के ग्रामों का सप्रमाण परिचय भी दिया है।

दिगम्बर जैन धर्म में तेरह पंथ समीक्षा : ले. गणधराचार्य गणाधिपति श्री कुन्थुसागर जी; प्र. श्री कुन्थ विद्या शोध संस्थान; वर्ष 2016; पृ. 123

लेखक बीसपंथी आम्नाय के समर्थक हैं और उन्होंने इस पुस्तक में दिगम्बर आम्नाय में प्रचलित तेरहपंथ की समीक्षा ही नहीं वरन् आलोचना भी की है। साधु के लिए इस प्रकार की समीक्षा–आलोचना उचित नहीं है। तेरहपंथ के समर्थकों ने भी विरोधियों के प्रति ऐसी विवेचनाएं प्रस्तुत की हैं। बीसपंथ और तेरहपंथ की मान्यताओं के अनुसार पूजा–पद्धति को अपनाया जाना, विरोध या निंदा का विषय नहीं होना चाहिए।

कन्हैया बने कुंथुसागर; प्रो. डॉ. (कु.) सुधा जैन (मो. 9415022777); प्राप्ति स्थान श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि; पृ. 70

डॉ. सुधा जैन ने गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी का जीवन परिचय चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो उनकी 50वीं संयम स्वर्ण जयंती (50वां दीक्षा दिवस) पर जून 2016 में प्रकाशित किया गया। लेखिका लखनऊ विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं।

मैं महावीर बोल रहा हूं ; ले. श्री दुलीचंद जैन; 'साहित्य रत्न' (मो. 9444047263); प्र. पेपर बैक्स, 4/19, आसफ अली रोड; नई दिल्ली–110002; 2017; पृ. 168; मूल्य150/–

भगवान महावीर का जीवन और संदेश श्री दुलीचंद जी ने एक नयी शैली में प्रस्तुत किया है। आगम सूत्रों के आधार से 69 वर्गों में भगवान महावीर के उपदेशों को सहज हिन्दी में अनुवाद कर प्रस्तुत किया गया है। प्रास्ताविकी में भगवान महावीर का जीवन–वृत्त श्वेताम्बर आम्नाय की परम्परा के अनुसार दिया गया है।

इसके पूर्व उन्होंने **उत्तराध्ययन सूत्र** के आधार से **महावीर का अन्तर्बोध** प्रकाशित किया था जिसका परिचय **शोधादर्श 83** में पृ. 63 पर दिया

गया है। प्रस्तुत पुस्तक में केवल **उत्तराध्ययन सूत्र** नहीं वरन् श्वेताम्बर परम्परा में मान्य सभी आगमिक सूत्रों के आधार पर विषय वस्तु प्रस्तुत की गयी है । लेखन शैली भी नवीन है।

शोधादर्श के अतिरिक्त जैन विद्या से सम्बन्धित अन्य शोध पत्रिकाएं

अनेकान्त – वीर सेवा मंदिर, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 से त्रैमासिक शोध पत्रिका के रूप में प्रकाशित। अंतिम अंक जुलाई–सितम्बर 2016 का है।

अर्हत् वचन – कुन्द–कुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मागांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर–452001 से प्रकाशित। अंतिम अंक अप्रैल–जून 2016 का है।

Jain Journal – जैन भवन, पी–25, कलाकार स्ट्रीट, कोलकाता–700007 से प्रकाशित। मात्र अंग्रेजी में प्रकाशित यह अकेली शोध पत्रिका है। इसका Golden Jubilee (1966–2016) अंक प्रकाशित हुआ है।

तुलसीप्रज्ञा – जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं–341306 से त्रैमासिक रूप में प्राकशित। सम्प्रति जनवरी–जून 2016 का अंक प्रकाशित हुआ है।

प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार – श्री भा. दि. जैन तीर्थ संरक्षणी महासभा, 5, राजा बाजार, खण्डेलवाल जैन मंदिर काम्पलेक्स, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। नवम्बर–दिसम्बर 2016 के अंक में डॉ. आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव, प्राचार्य, श्री रामकृष्ण पी.जी. कालेज, गोकुल, करसड़ा, वाराणसी, का **उत्तर प्रदेश की जैन मूर्तियां** विषयक शोध पत्र प्रकाशित है, जो वास्तव में एक पुस्तक है और विशेष रूप से पठनीय है।

श्रमण – पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई.टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी–221005 से त्रैमासिक शोध पत्रिका के रूप में प्रकाशित। अंतिम अंक जुलाई–सितम्बर 2016 का है।

Sambodhi – एल.डी. इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलॉजी, गुजरात यूनीवर्सिटी के निकट, नवरंगपुरा, अहमदाबाद–380009 से वार्षिक शोध पत्रिका के रूप में प्रकाशित। इसका अंतिम अंक 38, वर्ष 2015, है।

उपरोक्त के अतिरिक्त **दिशाबोध** (मासिक) कोलकाता से और **समन्वयवाणी** (पाक्षिक) जयपुर से प्रकाशित पत्रिकाएं समाज उद्बोधक के रूप में उल्लेखनीय हैं।

– डॉ. शशि कान्त

✧✧✧

आभार

श्रीमती आशा जैन ने अपनी पौत्री (सुपुत्र श्री सन्दीप कान्त जैन एवं पुत्रवधू सौ. सीमा जैन की पुत्री) आयु. शगुन के चि. अभिषेक के साथ 22नवम्बर को परिणय के उपलक्ष में रु. 251/– भेंट किये।

अजमेर से **श्री सुरेन्द्र पाल जैन** ने रु. 251/–की सहयोग राशि भेंट की।

दिल्ली के **श्री श्रीकिशोर जैन** ने श्रीसंस चेरिटेबुल ट्रस्ट की ओर से रु. 500/– की सहयोग राशि भेंट की।

कुरावली (जि. मैनपुरी) से **डॉ. (कु.) मालती जैन** ने नववर्ष के उपलक्ष रु. 500/– भेंट किये।

डूंगरपुर से पं. लक्ष्मीचंद जैन ने रु. 500/–की सहयोग राशि भेंट की।

अभिनन्दन

19 अप्रैल 2016 को **डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल** (अमलाई) को ऋषभांचल में ऋषभदेव पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

3 अगस्त को डॉ. शशि कान्त की पौत्री और श्री राजीव कान्त की पुत्री **आयु. तन्वी** को जवाहर लाल नेहरू इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल एजुकेशन एण्ड रिसर्च, पुडुचेरी, में एम.बी.बी.एस. परीक्षा में सर्जरी में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने के लिए स्वर्ण–पदक प्रदान किया गया।

7 अगस्त को **श्री विजय रूपाणी** ने गुजरात के मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। वह गुजरात की जैन समाज के सदस्य हैं।

14 सितम्बर (हिन्दी दिवस) को भोपाल के **श्री कैलाश मड़वैया** को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 'लोक भूषण' सम्मान से अलंकृत किया गया।

25 सितम्बर को कोलकाता में 'जैन संदेश' के सम्पादक **श्री अनूपचंद जैन,** एडवोकेट, फिरोजाबाद, को कोलकाता दिगम्बर जैन समाज द्वारा 'समाज गौरव' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

29 सितम्बर को विश्व मैत्री दिवस पर जैन मिलन लखनऊ द्वारा 'विश्व मैत्री सेवी सम्मान वर्ष 2016' 'प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान', वैशाली (बिहार), के निदेशक **डॉ. ऋषभचंद्र जैन 'फौजदार'** को प्रदान किया गया। 56–वर्षीय डॉ. 'फौजदार' विगत 30 वर्षो से प्राकृत, संस्कृत एवं जैन दर्शन के अध्यापन एवं अनुसंधान में प्रवृत्त हैं। अपने विषय में उनकी विविध उपलब्धियों का समादर करने का यह

सुअवसर 'जैन मिलन' लखनऊ को रहा। राज्यपाल श्री रामनाईक इस समारोह में विशिष्ट अतिथि थे। 7–वर्षीय **बेबी साम्भवी** ने अपने नृत्य द्वारा सभी दर्शकों को आनन्द प्रदान किया और राज्यपाल द्वारा उसे विशेष रूप से आशीष प्रदान किया गया।

29 सितम्बर को ही चेन्नई में 'भगवान महावीर फाउण्डेंशन' द्वारा बेंगालूरू की संस्था Compassion Unlimited plus Action को अहिंसा एवं शाकाहार के क्षेत्र में, सिलचर (असम) के **डॉ. सपम नबकिशोर सिंह** को शिक्षा के क्षेत्र में, कोयमबटूर (तमि0) के Shankar Eye Care Institutions के संस्थापक **डॉ. आर.वी. रमनी** को चिकित्सा के क्षेत्र में और दुर्ग (छ.ग.) की **श्रीमती शमशाद बेगम** को समाज सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य के लिए पुरस्कृत किया गया। समारोह की अध्यक्षता भारत के भूतपूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त श्री टी.एस. कृष्णामूर्ति द्वारा की गई और उसका संयोजन श्री के0 नन्द किशोर (आइ.ए.एस. रिटा.) द्वारा किया गया।

2 अक्टूबर को मेरठ में भारतीय जैन मिलन की सभा में "तीर्थंकर पारसनाथ" समाचार पत्र के दशक वार्षिक समारोह का भी आयोजन किया गया। इस अवसर पर समाज के लिए समर्पित वरिष्ठजन के रूप में **श्री हुकमचंद जैन** को "जैन मिलन रत्न" अलंकरण से सम्मानित किया गया।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, द्वारा सितम्बर में **पं. प्रवीण कुमार शास्त्री** को "जैनदर्शने त्रैलोक्य विषयक धारणायात् समीक्षात्मकम् तुलनात्मकम् वऽध्वैनम्" (जैन दर्शन में तीन लोक) विषय पर विद्यावारिधि (पी–एच.डी.) की उपाधि प्रदान की गई। प्रवीण कुमार जी बासवाड़ा में ज्ञायक संस्कृत कॉलेज एवं आचार्य अकलंक देव जैन न्याय महाविद्यालय, ध्रुवधाम, में प्राचार्य हैं।

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध संस्थान, श्रवणबेलगोला, से बेंगालूरू की **श्रीमती संगीता खारीवाल** ने Critical Study of Samayasāra पर शोध कार्य किया है और मैसूर विश्वविद्यालय से उन्हें पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई है।

गुजराती साहित्यकार **डॉ. रघुबीर चौधरी** को वर्ष 2015 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से जुलाई में सम्मानित किया गया। डॉ. चौधरी यद्यपि हिन्दी के अध्यापक हैं उन्होंने अपने लेखन के लिए मातृ भाषा गुजराती को ही चुना। डॉ. चौधरी ने बताया कि संत विनोबा भावे द्वारा प्रचारित 'गीता' के उपदेशों से प्रभावित होने के साथ ही उन पर सबसे अधिक प्रभाव भगवान महावीर के उपदेशों का रहा। वे गुजरात विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के अध्यापन से जुड़े हैं।

गुवाहाटी (आसाम) में 67वें अणुव्रत अधिवेशन के समापन समारोह में 23 अगस्त को यह घोषणा की गई कि अणुव्रत महासमिति, दिल्ली, द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन केन्द्र व शोध केन्द्र के निदेशक **डॉ. दिलीप धींग** को वर्ष 2016 का अणुव्रत लेखक पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। डॉ. धींग मूलतः बम्बोरा (उदयपुर, राज.), के निवासी हैं परन्तु पिछले तीन दशकों से निरंतर हिन्दी गद्य–पद्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य का सृजन कर रहे हैं।

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद का अधिवेशन ब्यावर में 12 अक्टूबर को डॉ. जय कुमार जैन की अध्यक्षता में और महामंत्री श्री सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' के संयोजन में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर **प्रो. धर्मचंद जैन** (जोधपुर) को आचार्य श्री ज्ञान सागर पुरस्कार, **प्रो. शुभचंद्र जैन** (मैसूर) को श्री सुधासागर श्रमण संस्कृति एवं तीर्थ संरक्षण पुरस्कार, **पं. छोटेलाल जैन** एडवोकेट (झांसी) एवं **पं. अशोक कुमार जैन शास्त्री** को क्षु. गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत् परिषद पुरस्कार, **श्री कैलाश कमल (डॉ. पुष्पराज जैन** ग्वालियर) और **पं. भगवान दास जैन** (सरधना) को पं. गोपाल दास बरैया स्मृति विद्वत् परिषद पुरस्कार, **डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन** (गाजियाबाद) को आचार्य श्री विद्यासागर पुरस्कार, **डॉ. आनन्द कुमार जैन** (जयपुर) को पं. डॉ. पन्नालाल जैन स्मृति पुरस्कार और **ब्र. डॉ. धर्मेन्द्र कुमार जैन** (जयपुर) को श्री गणेश कीर्ति स्मृति विद्वत् परिषद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके पूर्व दिनांक 9 से11 अक्टूबर को आचार्य समन्तभद्र वाङ्गमय राष्ट्रीय विद्वत् गोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें लखनऊ के **डॉ. विजय कुमार जैन** और **डॉ. (श्रीमती) राका जैन** ने भी सहभागिता की।

कोलकाता में नवम्बर में इण्डियन एसोसियशेन आफ कन्ज़रवेटिव डेंटिस्ट्स एण्ड इण्डोडाटिक्स के राष्ट्रीय सम्मेलन में **डॉ. अदिति जैन** को 'एक्सीलेंस ऑफ केस रिर्पोट' के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया। वह मैत्री दन्त चिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र में सीनियर लेक्चरर हैं।

मुम्बई में साहित्य कला मंच ने नवम्बर में अपने 37वें वार्षिकोत्सव पर कवि **श्री युगराज जैन** को निराला पुरस्कार से सम्मानित किया।

श्री प्रमयेश बासल्लय और **श्री अगम जैन** संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रशासनिक सेवा परीक्षा 2015–16 में चयनित हुये।

***शोधादर्श* का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

शोक संवेदन

2 जुलाई 2016 को फिरोजाबाद के श्री संजय जैन की सुपुत्री **आयु. तारुषी जैन** का बंगलादेश में ढाका में मुसलमान आतंकियों द्वारा वध कर दिया गया।

22 जुलाई को 62–वर्षीय **डॉ. कपूर चंद जैन** का असमय निधन हो गया। वह कुन्द–कुन्द जैन कॉलेज, खतौली, में संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे थे। उन्होंने "स्वतंत्रता संग्राम में जैन" विषय पर महत्वपूर्ण कार्य किया था और उसके विषय में **शोधादर्श** में भी यथासमय चर्चा की गई थी। उनकी पत्नी डॉ. ज्योति जैन भी जैन पत्रकारिता से जुड़ी हैं।

29 जुलाई को मसूरी में श्री सुरेश चंद जैन की पत्नी 85–वर्षीया **श्रीमती कनक लता जैन** का शांत परिणामों के साथ स्वर्गवास हो गया। वह कई वर्ष से अस्वस्थ चल रही थीं परन्तु अंत समय में उन्होंने शांतिपूर्वक देह त्याग किया।

21 अगस्त को उज्जैन में 90–वर्षीय **श्री माधव प्रसाद जैन** का शांति परिणामों के साथ निधन हो गया। वह हमारे उपाध्यक्ष डॉ. विनय कुमार जैन के अग्रज थे।

31 अगस्त को आगरा में 90–वर्षीय **श्री स्वरूपचंद जैन** का स्वर्गवास हो गया। वह उत्तर भारत में जैन तीर्थो के संरक्षण से विशेष रूप से जुड़े थे।

2 सितम्बर को लखनऊ में 86–वर्षीय **श्री किशोरीलाल वर्मा** का निधन हो गया। अंतिम समय तक उनकी धार्मिक प्रवृत्ति बनी रही।

8 सितम्बर को श्री मगनलाल जैन के कनिष्ठ सुपुत्र श्री मुकेश जैन की पत्नी **श्रीमती आशा जैन** का निधन हो गया। वह कैंसर से पीड़ित थीं।

9 अक्टूबर को आरा में 62–वर्षीय **श्री पद्मराज जैन** का निधन हो गया। वह 'अरण्य ज्योति' के सम्पादक थे और आरा की सामाजिक गतिविधियों में विशेष रूप से सक्रिय थे।

4 नवम्बर को इन्दौर में 82–वर्षीय **प्रो. गोकुल चंद जैन** का निधन हो गया। वह सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, में प्राकृत विभाग के अध्यक्ष रहे थे और प्राकृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन एवं शोक से विशेष रूप से जुड़े थे।

10 दिसम्बर को कोलकाता में जैन 'जर्नल' के वयोवृद्ध सम्पादक **प्रो. सत्य रंजन बनर्जी** का निधन हो गया

28 दिसम्बर को भोपाल में 92–वर्षीय **श्री सुन्दर लाल पटवा** का निधन हो गया। वे तीन बार मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे थे और केन्द्रीय सरकार में भी मंत्री रहे थे। उन्हें मरणोपरांत 'पद्म विभूषण' अलंकृत से सम्मानित किया जायेगा।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

समाचार विविधा

मांगीतुंगी सिद्ध क्षेत्र

श्रीमती लीलावती जैन का 'समन्वय वाणी' (16 से 31 अक्टूबर 2016) में प्रकाशित लेख "ढोल सुहावने मांगीतुंगी पंच कल्याणक के" विशेष रूप से पठनीय है। मांगीतुंगी सिद्ध क्षेत्र पर आर्यिका ज्ञानमती जी के संरक्षण में जो भव्य समारोह आयोजित किया गया और उसके अंतर्गत जो राजनीतिक पैंतरेबाजी की गई वह चिंतनीय है। अब इस सिद्ध क्षेत्र का नाम भी बदल कर ऋषभगिरि किया जा रहा है।

कुछ वर्ष पहले भगवान महावीर के जन्म स्थान के बारे में भी ऐसी ही खिलवाड़ आर्यिका जी ने की थी और राजगिर–नालंदा के पास के कुण्डलपुर को महावीर का जन्म स्थान प्रख्यापित व प्रतिष्ठापित किया था जबकि जन्म स्थान वैशाली है।

यदि साधु संस्था अर्थ संयोजन और राजनीतिक शैली की सत्ता धारिता का माध्यम बन जायेगी तो यह वीतरागता के आदर्श का विपर्याय ही कहा जायेगा।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

27 से 29 अगस्त को त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, द्वारा भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय और इण्डियन काउंसिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च के सौजन्य से आयोजित किया गया। संगोष्ठी का विषय Assimilative and composite character of Jaina Art : Its socio-cultural relevance in modern society था। संगोष्ठी में 80 सहभागी थे और उनमें से 24 ने अपने शोधपत्रों का वाचन किया। संगोष्ठी का निष्कर्ष यह रहा कि जैन धर्म में निहित दर्शन, आचार, कला और साहित्य का भारतीय संस्कृति पर विशेष प्रभाव रहा है, तथा अहिंसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह के सिद्धान्त जैन धर्म को एक विशिष्टता प्रदान करते हैं। इस संगोष्ठी का विवरण जुलाई–सितम्बर 2016 के **श्रमण** में प्रकाशित हुआ है।

पर्श्वनाथ विद्यापीठ में ही लाला हरजस लाल जैन लेक्चर सीरीज़ का 7वां व्याख्यान गुड़गांव के श्री अनूप जैन द्वारा जैन 'कर्म सिद्धान्त' पर 5 सितम्बर को दिया गया। उन्होंने जैन कर्म सिद्धांत को वैज्ञानिक विवेचना सिद्ध किया।

स्व–रोजगार योजना

दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा 'पुण्य निधि' (शिक्षा स्वास्थ्य रोजगार) के अन्तर्गत तीर्थ–क्षेत्र करगुवां जी, झांसी, में महिला पापड़ उद्योग केन्द्र की

स्थापना की गई। मशीनें आटोमेटिक हैं तथा पापड़ जैन विधि (छने हुये पानी से दाल धोकर और मसाले सुखाकर लगाना) से बनायें जायेंगे।

इसका नाम **महा पापड़** रखा जायेगा।

इस संस्था द्वारा स्वरोजगार योजना के अंतर्गत सिलाई एवं कढ़ाई केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। संस्था के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोक जैन बड़जात्या और राष्ट्रीय महामंत्री श्री विपिन कुमार जैन सर्राफ हैं।

अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट

श्री धर्मवीर, (रिटा0 प्रमुख अभियन्ता, उ.प्र. सार्वजनिक निर्माण विभाग), ने लोकोपकारी कार्यों के लिए 'अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट' की स्थापना की थी जिसके वह अध्यक्ष हैं। पारिवारिक त्रासदियों के बावजूद वह अपने लोक सेवा कार्य में पूर्ण समर्पण के साथ प्रवृत्त हैं। इसकी गतिविधियों के अन्तर्गत विद्यार्थियों को टेक्निकल और मेडिकल आदि क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। आश्रमों और गुरुकुलों के बच्चों की शिक्षा और भोजन तथा चिकित्सा के लिए भी सहायता प्रदान की जाती है। विकलांग व्यक्तियों को तथा जरूरतमंद महिलाओं और विधवाओं एवं बच्चों को भी आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। पशु–पक्षियों के भरण–पोषण के लिए भी सहायता प्रदान की जाती है।

उनके सुपुत्र श्री आशु जैन को उत्तर भारत के लिए आयकर विभाग में चीफ इन्वेस्टीगेटिव ऑफिसर नियुक्त किया गया है। वह स्वयं अगस्त माह में 84 बसंत पारकर 85वें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। इसके लिए **शोधादर्श** परिवार एवं तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति की ओर से उनका हार्दिक अभिनन्दन!

लखनऊ वि.वि. में इतिहास एवं संस्कृति शोध संस्थान की बैठक

1 दिसम्बर को लखनऊ विश्वविद्यालय में इतिहास एवं संस्कृति शोध संस्थान की बैठक प्रो. डी.पी. तिवारी की अध्यक्षता में हुई। इसमें श्री निर्मल कुमार जैन सेठी, डॉ. शशि कान्त जैन, श्री आई.पी. पाण्डेय, डॉ. धीरज जैन, डॉ. बृजेश रावत, श्री शैलेन्द्र जैन, श्री प्रदीप पाटनी, श्री प्रमोद जैन, डॉ. सुधा जैन, डॉ. पत्रिका जैन आदि ने सहभागिता की। इस बैठक में आगामी मार्च में सिन्धु घाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में एक सेमिनार आयोजित करने का प्रस्ताव किया गया। विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. एस.पी.सिंह ने इस सेमिनार के आयोजन में सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया। उन्होंने श्री सेठी जी के इस प्रस्ताव की कि लखनऊ विश्वविद्यालय में एक जैन शोध पीठ की स्थापना की जाये, के सम्बन्ध में भी सहयोग देने का आश्वासन दिया।

पाठकों के पत्र

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श–83 में गुरुगुण–कीर्तन के अन्तर्गत कविवर श्री बुधजन के काव्य ने प्रभावित किया। उनके सतसई के दोहों में उनका विनयी, निःस्वार्थ और उपदेशक व्यक्तित्व उजागर होता है। बुधजन के आध्यात्मिक पद पढ़कर भाई रमा कान्त जैन का स्मित स्वरूप स्मरण हो आया। इस अंक में कीर्तिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, डॉ. केशरी नारायण शुक्ल तथा डॉ. शशि कान्त के लेख गुरु गम्भीर हैं। इनमें विशद विवेचन है। श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' की कविता 'परम अहिंसा धर्म' सरल शब्दों में उत्तम उपदेश देती है। इस विधा में वे पारंगत हैं। श्रीमती सरिता अग्रवाल की कविता 'हृद्योद्गार' में प्रस्तुत भाव भरे उद्गार हैं। श्री सुरेश जैन ने साहित्य क्षेत्र के तपस्वी श्री सुरेश जी 'सरल' के व्यक्तित्व और कृतित्व की झलक प्रस्तुत की है जो स्तुत्य है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन 'विद्यावारिधि' के वैदुष्य के विषय में जितना भी कहा जाये कम ही है। **शोधादर्श** के प्रत्येक अंक में मुझे अथ से इति तक एक सुधी सुयोग्य सम्पादक का बिम्ब झलकता दिखाई देता है। वह चाहे भाषा शैली हो अथवा कथ्य का विवेचन, सर्वत्र सम्पादक का श्रम दृष्टिगत होता है, अस्तु हार्दिक बधाई!

डॉ. उषा माथुर, लखनऊ

स्व. प्रो. डॉ. केसरी नारायण शुक्ल न केवल प्रतिष्ठित साहित्य मर्मज्ञ और भाषा–विज्ञानी थे, वे संगीतज्ञ भी थे, यह कम लोग जानते हैं। वे सितार और तबले में पारंगत थे। वे दो बार हमारे घर हमारा सितार सुनने आए, हमने सितार बजाया, उन्होंने तबले पर संगत की। वे हमें Lexicology पढ़ाते थे। उनका पढ़ाया कोश–विज्ञान हमें अभी तक याद है।

डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार', वैशाली

शोधादर्श अपने नाम और परम्परा के अनुसार पाठकों तक उत्कृष्ट सामग्री निरन्तर पहुंचा रहा है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, उनके सहयोगियों और उत्तराधिकारियों ने इस पत्रिका को उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर बनाने में सार्थक श्रम किया है। इसलिए सभी का अभिनन्दन और बधाई!

शोधादर्श 83 में सभी निबन्ध एवं कविताएं पठनीय और प्रेरक हैं। विद्वानों को लेखकीय सहयोग प्रदान करना चाहिए।

इस अंक के कवर पृष्ठ पर जो मंदिर का चित्र छपा है, वह वैशाली स्थित शान्ति स्तूप का चित्र है। भगवान महावीर के जन्मस्थान पर निर्मित मंदिर का चित्र ई–मेल से भेज रहा हूँ।

(चित्र प्राप्त हो गये हैं, धन्यवाद! चित्र प्रस्तुत अंक 84 के कवर पृष्ठों पर दिये जा रहे हैं। – सम्पादक)

श्री प्रेमचंद जैन, बूंदी

पाठकों की जिज्ञासा को पूर्ण करने वाला **शोधादर्श** का यह अंक पठनीय एवं प्रशसनीय है।

जैन धर्म के महान पंडितो – बुधजन जी, भूधर दास जी, बनारसीदास, तथा अनेक मनीषी विद्वान द्यानत राय जी, वृन्दावन लाल जी, दौलत राम जी, जिन्होंने जैन धर्म के भण्डार को भरा तथा उसे जनमानस तक पहुंचाने में अपना जीवन समर्पित कर दिया – उनके बारे में तथ्यात्मक व भावात्मक प्रसंगों से ओत–प्रोत यह अंक वन्दनीय है।

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श–83 में गम्भीर शोध के पश्चात् लिखे गये विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़कर ऐसा लगा कि आपने शोध करने के लिये अब कुछ छोड़ा नहीं है। निम्नांकित लेख अत्यंत प्रभावशाली है – "आधुनिक युग–पूर्व हिन्दी के विकास में जैनों का योगदान" – स्मरणीय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, "भारतीय साहित्य और जैन साहित्यकार" – डॉ. केसरी नारायण शुक्ल, और "प्राकृत का अभिलेखीय साहित्य" – डॉ. शशि कान्त। अन्य लेख भी श्रमसाध्य एवं प्रशंसनीय है।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श 82 में ज्योति प्रसाद जैन का "मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य" और प्रो. प्रकाशचंद्र जैन का 'आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि व जैन स्मारक" आलेख गवेषणापूर्ण, विचारोत्तेजक और जैन संस्कृति के वैभव को दर्शाने वाले हैं। दोनों आलेख पठनीय और मननीय हैं। इनसें मूलसंघ और मूलआम्नाय की धारणा पुष्ट होती है। श्री अजित प्रसाद जैन काआलेख 'तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन" समसामयिक और दिशाबोधक है। मेरा आलेख "शुद्धात्म शिव और शिव पूजा की अहिंसक सामग्री" प्रकाशित किया, जिसके विनम्र आभार स्वीकार करें। इस आलेख की विषयवस्तु हमें यह दर्शाती है कि धार्मिक क्रिया का किस प्रकार अवमूल्यन हुआ है और विशुद्ध अहिंसक पूजा सामग्री कैसे हिंसा जन्य हो गई। श्री मगनलाल जैन ने "एक निष्ठावान श्रावक का भाव चिन्तन"आलेख में क्या होना चाहिए और क्या हो रहा है, का सचिव चित्रण प्रस्तुत कर समाज को दिशाबोध कराया है। कृत्रिम तीर्थ और त्यागी वर्ग की अति–लौकिक प्रकृति श्रमण संस्कृति को रसातल में ले जा रही है; धर्म को अर्थार्जन का उद्योग बना दिया गया है, चिन्तनीय है। श्री रमा कान्त जी का "कविवर भगवती दास" आलेख शोधपरक और प्रेरक है।

श्री नलिन कान्त जी को अहिंसा इन्टरनेशनल का पत्रकारिता पुरस्कार मिला, अभिनन्दन! पुरस्कार समारोह का सजीव चित्रण श्रीमती मोहिनी जैन ने

किया है, उनका आभार! इसी समारोह में मुझे भी शाकाहार – जीवदया पुरस्कार मिला था। भाई श्री नलिन कान्त जी एवं अन्य पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं से सद्भावनापूर्वक सम्पर्क का अवसर मिला, जिसकी स्मृति ताजा है।

अंक के सभी स्थायी स्तम्भ श्रम साधना पूर्वक एकत्रित सामग्री एवं आवश्यक सूचनाओं से परिपूर्ण हैं। साहित्य सत्कार में दस कृतियों की सारगर्भित समीक्षाएं हैं। मेरी भी दो कृतियों की दिशाबोधक समीक्षा डॉ. शशि कान्त जी की प्रकाशित हैं जिसके लिए मैं उनका आभारी हू।

समाचार विमर्श में डॉ. शशि कान्त जी का शोधपरक आलेख "संथारा पर हंगामा" प्रकाशित है। यह गागर में सागर समान संथारा पर हाईकोर्ट के निर्णय दि. 10–8–2015 के तथ्यों, उसके प्रभाव, पृष्ठभूमि एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश दिनांक 31–8–2015 के तथ्यों को सटीक व्यक्त करता है।

शोधादर्श 83 हिन्दी के विकास में जैनों के योगदान और प्राकृत–अपभ्रंश भाषाओं में जैनों के समृद्ध साहित्य को रेखांकित करने वाला महत्वपूर्ण अंग बन गया है। यह दुखद है कि गोपनीयता या अपने तक सीमित रखने की संकोची प्रवृत्ति के कारण जैन साहित्यकारों, कवियों, टीकाकारों आदि को हिन्दी साहित्य के इतिहास में वह स्थान नहीं मिला जो अपेक्षित था। विपुल जैन साहित्य का सही मूल्यांकन किया जाना भारतीय संस्कृति के हित में है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का "आधुनिकयुग–पूर्व हिन्दी के विकास में जैनों का योगदान" और डॉ. केसरीनारायण शुक्ल का "भारतीय साहित्यकार और जैन साहित्यकार" तथा डॉ. शशि कान्त का "प्राकृत का अभिलेखीय साहित्य" – तीनों आलेख अत्यंत महत्वपूर्ण, गवेषणा और यथार्थ के दिग्दर्शक हैं। इनका प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बद्ध पत्र–पत्रिकाओं में होना चाहिए। भाषाओं के विकास में प्राकृत–अपभ्रंश के योगदान को दृष्टिगत कर मैंने मानव संसाधन मंत्रालय से अनुरोध किया है कि उर्दू अकादमी / परिसर की तर्ज पर National Council for Promotion of Prakrit (Apabhransh) Language की स्थापना की जाये।

"क्या Kalanos (कल्याण मुनि) दिगम्बर जैन मुनि थे" आलेख भ्रम निवारक और इतिहास की सच्चाई को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। प्रो. डी.सी. सरकार का आलेख The Udayana - Vihar धर्मान्धता की क्रूर परिणति का सूचक है। इसके अवशेष गीताई मन्दिर (वर्धा) के प्रेरणास्रोत प्रतीत होते हैं।

स्व. श्री रमा कान्त जी का कविवर बुधजन पर आलेख उनकी आध्यात्मिकता को प्रकाशित करता है। डॉ. (श्रीमती) अनीता जैन का आलेख दिशा बोधक और उन्मुक्त चिन्तन का प्रेरक है। श्री सुरेश जी जैन

(आई.ए.एस.) का विशुद्ध साहित्यिक आलेख श्री 'सरल' जी के साथ उनकी स्वयं की साहित्यिक प्रतिभा का भी दिग्दर्शक है।

इस अंक के अन्य सभी स्थायी स्तम्भ सूचनावर्धक एवं समसामयिक हैं। साहित्य सत्कार में डॉ. शशि कान्त जी ने 11 कृतियों की सारगर्भित समीक्षा प्रस्तुत की है। मेरी भी 2 कृतियों की यथार्थ परक समीक्षा की है जिसके लिए मैं आभारी हूं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नारी की बदलती हुई भूमिका के सन्दर्भ में डॉ. शशि कान्त जी ने स्त्री–अभिषेक के निषेध की अवधारणा पर पुनर्विचार हेतु सुझाव दिया है।

अंक में प्रकाशित सभी कविताएं भावबोधक हैं। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का प्रतिवेदन वर्ष 2015–16 एवं आय–व्यय का विवरण प्रकाशित किया गया है, स्थायी कोष में वृद्धि शुभ चिन्ह है।

श्री विष्णु दत्त शर्मा, लखनऊ

शोधादर्श 83 बहुत अच्छा बन पड़ा है, आपको बधाई! प्रथम लेख मेरे प्रिय सखा स्वर्गीय श्री रमा कान्त जैन का है, यदि वे आज जीवित होते तो मैं स्वयं आकर उन्हें धन्यवाद देता। उनकी मृत्यु मेरे लिए असहनीय घटना थी। स्वर्गीय श्री अजित प्रसाद जैन हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे और उन्हें किताबों का अच्छा शौक था। स्वर्गीय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन सही मायने में महावीर जी के सच्चे भक्त थे और उन्होंने **शोधादर्श** पत्रिका निकालकर इस बात को प्रमाणित भी कर दिया था। डॉ. शशि कान्त जैन इस पत्रिका के संरक्षक हैं, इस कारण यह पत्रिका दीर्घ कालीन चलेगी ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरे लिए यह सौभाग्य रहा कि मैं रमा कान्त जैन जी को अपनी संस्था तुलसी स्मारक के माध्यम से सम्मानित कर सका। तुलसी स्मारक समिति 1952 में मेरे पिता स्वर्गीय पं. चतुर्भज शर्मा के द्वारा स्थापित की गई थी। पिता जी 1931, 1941 और 1942 के स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी सहभागिता का "विद्रोही की आत्म कथा" में विस्तार से दिग्दर्शन कराया है। मैंने भी उनके ऊपर एक रचना लिखकर अपनी श्रद्धा प्रकट की थी –

आओ सज्जनों तुम्हें सुनाएं गाथा उस सेनानी की
वीर भूमि बुन्देल खण्ड के तपे तपाये मानी की
कोटि–कोटि कण्ठों में जिसकी गूंज रही है गुण गरिमा!
एक नहीं कितनी ही विपदायें पथ में आयीं
वीर बांकुरे को देखो पर वे रोक नहीं पायीं
आओ सज्जनों तुम्हें सुनाएं गाथा उस सेनानी की।!

✧✧✧

आवश्यक सूचना

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं । परन्तु अंक 85 को **युग–पुरुष–त्रयी (डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन व श्री रमा कान्त जैन) स्मृति–ग्रन्थ** के रूप में प्रकाशित किया जायेगा, जिसका लोकार्पण स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन की जन्म–शती जयंती पर होगा।

स्मृति ग्रन्थ के लिए शुल्क रु. 100/–(एक सौ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए स्मृति ग्रन्थ का शुल्क 40 डालर है।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहिए, परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

— **सम्पादक**

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर–251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
27 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
28 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004

वर्ष 2016 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 अपभ्रंश साहित्य एकेडेमी, जयपुर
2 श्री अमर नाथ, लखनऊ
3 श्री अखिलेश जैन, लखनऊ
4 श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़
5 डॉ. अमित जैन, नई दिल्ली
6 श्री इन्द्र कुमार साटीया, हुबली (2020 तक)
7 डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर (2018 तक)
8 श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर
9 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई
10 श्री धन कुमार जैन लखनऊ
11 श्री पवन कुमार जैन, पुणे,
12 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की (2017 भी)
13 श्री मगन लाल जैन, लखनऊ (2019 तक)
14 श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ
15 श्री रतन चन्द्र गुप्ता, लखनऊ
16 श्री वीर कुमार दोशी, अकलुज (2017 तक)
17 श्री शांति प्रसाद जैन, मेरठ
18 श्री संजय किशोर अग्रवाल, मुरादाबाद
19 श्री सचिन जैन, बड़ौत
20 श्री हीरालाल जैन, जबलपुर
21 श्रीमती सुमन जैन, लखनऊ (2017)
22 श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली (2017)

✦✦✦